..., जब कि १६-
...रोड़ १० लाख
... कलकत्ता की
... फैक्टरीके उत्पा-
... इजरकी वृद्धि
६—६० में ५६
...की हुई थीं।

...तियोगिता

...ूर। 'नाफेन'
...क अकादमीके
...८ नवम्बर तक
...ार परिषद
नाटक समारोह
...। इस नाटक
...ंपा रवीन्द्र
...होगा। इसका
...र्थ म हनजात
...में १३ नाटक
...तियोगितामें
...तियोगियोंको
...ीकाल लाल
...-न फो...

...त्रिकृत विख्यात फिल्म कथा-लेखिका मारिया रिमर्नोवाने तैयारकी थी। निर्माता वेरा स्त्रोयेवा तथा कैमरा मैन आन्तोनिना एगिना थी।

लेखिका मारिया

आधुनिक गांवके बारेमें फिल्म कथा-लिखनेका विचार मारिया रिमर्नोवाको आराम नहीं लेने देता था। उसका शैशव एक गांवमें ही गुजरा जब वह स्कूलमें पढ़ती थी। उसका सारा खाली समय खेतोंमें बड़ोंकी सहायता करते अथवा केवल बैठकर लोक संगीत सुनते व्यतीत होता था। उसे वहांकी असीम स्तेपी भूमि, सूखे घासकी तेज गन्ध, चुपचाप काम करनेवाले लोग, उनका कठोर परिश्रम भला कैसे भूल सकते हैं? इन सब चीजोंको कहानी अभिव्यक्त करनेकी तीव्र इच्छा कब से उसके मनमें दबी पड़ी थीं। मारिया रिम... गांवका जीवन पसन्द... और इसलिए उसने गांवमें ...का बननेका निश्चय किया। ...ाके प्रति उसका अनुराग ...लावन फिल्म हुआ...।

साथ मिलकर लिखा। भारतीय जनता, उसकी संस्कृति और उसके रहन-सहनके ढंगसे घनिष्ठ परिचय प्राप्त करनेके लिए मारिया रिमर्नोवा भारत भी रही थी।

फिल्म निर्माता

'पोव्युरको पोल्ये' की कहानी को सही ढंगसे चलचित्रमें अवतरित करनेके लिए मानव मनोविज्ञानको, ग्रामीण जीवनकी विशेषताओंको अच्छी तरह समझनेकी योग्यता अपेक्षित है। और इस चित्रकी निर्मात्री वेरा स्त्रोयेवाको इस काममें सफलता मिली है।

सोवियत फिल्म दर्शक अर्सेसे वेरा स्त्रोयेवाको जानते हैं। तीन वर्ष पहले इसमेंसे बहुतोंने युवा अभिनेत्री स्त्रोयेवाको युवा दर्शक थियेटर के रंगमञ्च पर देखा होगा। उसके भविष्यके गर्भमें बहुत सी अमूल्य निधियां छिपी पड़ी थी।

एक बार वेरा स्त्रोयेवाको एक फिल्मके निर्माणमें भाग लेनेको कहा गया। उसके जीवनका यह मोड़ था। उसने फिल्म निर्माता बननेका ...

करनेके दूसरा वह फिल्ममें अत्यधिक अभिव्यक्ति पैदा करती है।

इस समय मास्कोनिना एगिना विख्यात सोवियत निर्माता ग्रिगोरी अलेक्सन्द्रोवके सहयोगसे रूसी याददार नामक एक सुन्दर फिल्म का बड़े उत्साहके साथ निर्माण कर रही हैं, जिसका सम्बन्ध सागरोंमें हुए छठे विश्व युवक और छात्र मेले से है।

सोवियत फिल्म कलाके प्रतिभा सम्पन्न प्रतिनिधियोंके एक दल द्वारा निर्मित पोव्युरको पोल्ये फिर दर्शकोंको अत्यधिक भावाभिभूत और प्रभावित करती है।

पाकिस्तानी संगीत निर्देशकका पुत्र पार्श्व गायक

प्रसिद्ध पाकिस्तानी संगीत-निर्देशक स्वर्गीय मास्टर गुलाम हैदरके २२ वर्षीय पुत्र मुमताज अली पार्श्व गायक बननेकी तैयारी में है। वह फिरदौस एक स्थानीय स्टूडियोके कमउच्च ...टमैण्टमें एक प्रति... काम

...करनेके लिए कलाकारोंकी एक सूची तैयार कर रहे हैं।

नौशाद अली इस फिल्मके लिए संगीत देंगे। यह पहला अवसर है जब कि नौशाद किसी पौराणिक फिल्मके लिए संगीत तैयार करेंगे। बताया जाता है कि के० आसिफ एक साथ दो फिल्मोंका निर्माण आरम्भ करने विषयक एक विस्तृत कार्यक्रमकी योजना बना रहे हैं।

'गोदान' की शूटिंग पुनः वाराणसी में

निर्माता निर्देशक त्रिलोक जैटलीके चित्र 'गोदान' जो स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास पर बनाया जा रहा है कि शूटिंगके सिलसिले यूनिटके कलाकार वाराणसी आये। प्रथम दिन निर्माता निर्देशक ने होटल दी पेरिसमें एक दावत दी जिसमें प्रमुख अधिकारी; कुछ पत्रकार तथा नागरिक उपस्थित थे।

फिल्मके एक दृश्यमें स्वामाविकता लानेके उद्देश्यसे सहमूद, राज उमार तथा कामिनी, कौशलको...

शुद्धि पत्र ।

पत्र	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१७	विलासनिया	बिलासिनिया
३२	१	प्रिति	तृप्ति
३३	३	मारने	मारदेने
"	"	सिरपर	सिर
"	५	अनुज्ञा पाकर	पा अनुज्ञा
"	"	भी	भि तत्र
४१	२६	ब्रम् हा	ब्रह्मा
४८	१२	स्वर्स	स्पर्श
५६	२६	अनुग्रहीत	अनुगृहीत
६५	२२	देवि	देवी
"	२६	भगवति	भगवती
७०	३	उसी प्यारी की	तेरी ऐ प्यारी
७१	३	प्रेम	प्रेय
७४	२०	वह	वेही
८८	२८	घिरे हुए	घिरी हुई
९०	१४	करने ये	करने में

ग्रन्थकर्ता की जीवनी।

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के रचयिता श्रीकृष्णमिश्र सरयूपारी ब्राह्मण थे। आपका जन्म सरयूपार के मधुबनी ग्राम में हुआ था। सरयूपारियों में गर्ग गौतम शाण्डिल्य गोत्र वाले ब्राह्मण बड़े श्रेष्ठ समझे जाते हैं। उनमें मिश्रजी का गौतम गोत्र था। आपके जन्म तिथि का पता न लगने पर भी इस बात का ठीक पता चलता है कि आपका जन्म ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था। आप उस समय के बड़े प्रसिद्ध विद्वान थे।

* राजा यवनारि उस समय काशी का राजा था। एक यवन के नित्यप्रति वध करने से उसका नाम यवनारि पड़ा था। अब भी लोग उसे बनार राजा के नाम से स्मरण करते हैं। किसी रात्रि को स्वप्न में उसने एक ब्राह्मण देखा, जिसने कि उसके नरहत्या

---

* अत्रान्तरे शशासोर्वीं यवनारिर्नराधिपः। वाराणसीमधिश्राय राजधानीं पुरद्विपः॥ चन्द्रवंशसमुद्भूतः प्रचण्डभुजविक्रमः ॥२॥ चतुरङ्गबलाधीशः श्रुत्वाकाशीनरेश्वरः॥ गवां हरण मुद्वृत्तम्लेच्छेभ्योऽक्रुध्यदुद्धटः॥४॥ यवनाख्यत्र जानन्ति तत्रापत्यानि हन्त्यसौ॥५॥ तेनैवकर्मणातस्य यवनारि रिति प्रथा॥६॥ एकदा स्वप्न आगत्यतपस्वी कश्चिदुज्ज्वलः। समभाषत राजानं संबोध्य प्रणतम् पुरः॥६॥ देवो देवाधिको वापि सत्वंका श्याधिपत्यतः। नृशंसकर्माकिंवृत्तोम्लेच्छमात्रवधव्रतात् ॥१४॥ अन्यैर्गावो हता म्लेच्छैरन्य एव हतास्त्वया। को विवेकोऽत्र भवतो निघ्नतोऽनपराधिनः॥१५॥ आग्रहायणमासस्य कृष्णपक्षत्रयोदशी। अद्येतोमासषट्केन म्लेच्छचक्रंभविष्यति॥१७॥काशीमुत्सृज्य गच्छ त्वंविन्ध्यं वसुमती-धरम्। तत्र स्थापयशुद्धान्तं प्रजां च स्वानुगामिनीम् ॥१८॥यजस्व विधिवद्यज्ञैः कीर्ति-मूर्जयनिर्मलाम्। इत्युदीर्य गते तस्मिन् तपस्विनि हितैषिणि। प्रबुध्य राजा सहसा समुत्थाय कृताह्निकः ॥२१॥ निवेश्य विन्ध्यद्रोणीषु चातुर्वर्ण्यं यथाक्रमम् ॥ पुनः काश्यां समागत्य दानानि विदधावसौ ॥ २३ ॥ सर्वपापविशुध्यर्थंवाजपेयचिकीर्षुणा ॥ १ ॥ आमन्त्रिता द्विजादिभ्यः समायाता यथायथम्। अन्तरे काशिराजेन तपोविद्यावलम्बिषु। सत्कृतेषूप-विष्टेषुतेषु कृष्णो प्युपागतः। राजोवाच। षष्टिवर्षाण्यतीतानि काश्यां राज्यं प्रशासतः। एकं व्रतं ममत्रह्मन्म्लेच्छानां प्रत्यहं वधः। संकल्पितः स वा कार्य्यो मया सर्वात्मनेति धीः॥ ३४॥एवम् बहु तिथे काले गते वसुमतीश्वरः॥ छलेनास्मै ददौ ग्राममं श्रवणद्वादशीदिने॥४॥ दत्तंदातृपुरं कृष्णशर्मणे यवनारिणा इति ताम्बूलपत्रस्य मध्ये संलिख्यभूपतिः॥४८०॥

की निन्दा की, और उसके राज्यनाश की भविष्यद्‌ वाणी कही। राजा ने यवनों के गोवध से चिढ़कर ऐसी प्रतिज्ञा की थी, सो उस ने ऐसा स्वप्न देखने पर भी, अपनी घोर प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ा, और अपने समय को सन्निकट जान करके बनारस उजाड़कर गिरजा पुर बसाया, जिसे लोग मिरज़ापुर कहते हैं, और स्वयम् यज्ञ करके काशी में सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों को देने की इच्छा किया की

उसने अपने यज्ञ में चारों दिशाओं से बड़े२ विद्वानों को बुलाया। उन्हीं विद्वानों में आहूत होकर श्रीकृष्ण मिश्रजी भी काशी पधारे। यह यज्ञ सं०१०८७ विक्रमीय के लगभग हुआ था। इस यज्ञ में राजा बन्नार ने अपरिग्रह वृत्ति श्रीकृष्ण मिश्रजी को पान के धोखे से दातृपुर नामी ग्राम का दान पत्र देदिया। मिश्रजी ने, इस वञ्चना से क्रुद्ध होकर राजा को शाप दिया कि 'तू राज्यभ्रष्ट हो और यह राज्य काल पाकर मेरे वंशजों के अधिकार भुक्त हो'।

उसी सम्बत् में महमूदग़ज़नवी का भेजा हुआ सालार मसऊद ग़ाज़ी, जिहाद के लिये बनारस पर चढ़ आया। एक महीना लड़ने के बाद राजा बन्नार मारागया, ~~और सालार मसऊदग़ाज़ी भी खेत रहे~~। मुसलमान लोग अब भी राजा यवनारि को राजा बन्नार, और सालार मसऊदग़ाज़ी को ग़ाज़ीमियां के नाम से याद करते हैं। उनके विवाहोत्सव का मेला (बहुत सम्भव हैं कि उनके शहीद होने

स प्रतिग्राहयामास गौतमम् छलतः पुरम् ॥ ४६ ॥ अपरिग्रहतो धर्मोविस्त्वया च्यावितो स्म्यहम्। काश्याधिपत्यादचिराच्च्युतस्त्वं च भविष्यति। आराजकोयं विषयो भूयोभिरथ वत्सरैः ॥ त्वद्दत्तेत्र पुरं काश्यां मद्वश्यं लप्स्यते नृपम् ॥ ५१ ॥ यवनेशः समभ्येत्य युयुधे यवनारिणा ॥ ७६ ॥ मासान्ते क्षीणसामर्थ्यं हतसेनापुरःसरम्। प्राणैर्वियोजयामास यवनेशो नरेश्वरम् ॥ ७८ ॥ चेतसिंहविलासे।

راجۂ بنار شہاب الدین محمد غوری کے فوج کے مقابل ہوکر میدان جنگ میں مارے گئے ۔ (تاریخ بنارس)

جب راجۂ بنار یہاں کا مسند نشین ہوا اوسنے بنارس نام رکھا ۔ یہی رسم حاطم دل نگین ہوا ۔۔ اگر راجۂ مذکور سنہ ۱۰۳۰ء مطابق سنہ ۴۲۰ ہجری میں سالار محمود غازی کے لڑائی میں مارا گیا مگر شہر اوسی کے نام سے پکارا گیا (جغرافیۂ بنارس مصنفۂ بابو کیشو رام صاحب)

در سنۂ چہار صد و بست ہجری سالار محمود غازی بحکم سلطان محمود غزنوی بعزم جہاد برسر راجۂ بنار تاخت و تمام مملکت را بے چراغ ساخت (بلونت نامہ)

के यादगार में वस्तुतः आरम्भ हुआ हो) अब भी हरसाल ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार को काशी में हुआ करता है। इस भाँति मिश्रजी के शाप का प्रथम अंश तत्काल सफल हुआ।

तब से मिश्रजी का निवास दातृपुर (तेतरिया) ग्राम में हुआ। इनको दो* स्त्रियां थीं, और जनश्रुति यह कहती है कि इन्होंने दूसरा विवाह काशी आते समय किया था। इससे यह भी प्रतीत होता है कि उस समय मिश्रजी की स्थविरावस्था नहीं थी। आपके दोनों धर्मपत्नियों से दो पुत्र हुए, और वे लोग तथा उनके वंशज बहुत दिनों तक वहीं बसे थे। मिश्रजी के कनिष्ठा धर्मपत्नी के वंश में मनसाराम हुए। उनके पुत्र महाराज वरिवण्डसिंह ने अपने भुजाओं के बल से काशी का आधिपत्य प्राप्त किया। उन्ही के पुत्री के वंशज आज तक बनारस के महाराज हैं। इस कथा को जिसे विस्तारपूर्वक देखना हो, सो चेतसिंह विलास तथा तवारीख बनारस देखै। इस प्रकार काल पाकर मिश्रजी के भविष्यद्वाणी का शेषांश भी सफल हुआ।

मिश्रजी के काशी आने के कोई बीस बरस बाद संवत ११०७ के लगभग, चंदेल वंशी कालिञ्जराधिपति विजयपाल का पुत्र कीर्तिवर्मा राजगद्दी पर बैठा। उसके सेनापति का नाम गोपाल था। यह गोपाल श्रीकृष्ण मिश्रजी का शिष्य था, और इसी के कल्याणार्थ मिश्रजी ने प्रबोधचन्द्रोदय नामक नाटक बनाया। ज्ञान पड़ता है कि इसी गोपाल के सत्संग से राजा कीर्तिवर्मा को ऐसी शुभ रुचि उत्पन्न हुई, कि उनके दर्बार में पहिले पहल यह नाटक खेला गया। जनश्रुति भी ऐसा ही कहती है कि मिश्रजी को एक

---

* उभाभ्यामतिविद्याभ्यामिव स्त्रीभ्यां समन्वितः। अप्रतिग्रहईशार्चापरो ब्राह्म्या-श्रियोज्ज्वलन् ॥ २७ ॥ अथ केनापि कालेन पुत्रौ सुषुवतुः शुभौ ॥ पत्न्यौतस्य प्रशस्तस्य तपोविद्यासमाधिभिः ॥ १ ॥ तयोर्ज्यायान्देव इति कनीयान् राम इत्यभूत् ॥ ४ ॥ देव-शर्मासमुत्सृज्य ग्रामं दातृपुरं पितुः। क्षात्रधर्मे स्थितोऽन्यत्र निवासमकरोन्निजम् ॥५॥ रामशर्मा तु तत्रैव कृत्वा दातृपुरे स्थितिम्। प्रजासंरक्षणामासीच्छात्रवानपि शस्त्रवान् ॥६॥ तेषु राम इव श्रीमानलौकिकपराक्रमः। प्रथमोभूत्सुप्रथमो मनसा राम नामकः ॥ ११ ॥ अनभ्रमभवव्द्योम प्रसन्नं हरितां मुखम्। पुंसां हृदि सुखं यस्मिे वलिवन्यसमुद्भवे ॥ २१ ॥ चेतसिंहविलासे ॥

शिष्य था, जिसकी रुचि किसी प्रकार से वेदान्त के ओर नहीं होती थी। सो मिश्रजी ने नाटक रूप में ब्रह्मविद्या का उपदेश करके अपने गुरुपद को सार्थक कर दिखलाया। बहुत सम्भव है कि वह शिष्य गोपाल सेनापति ही हो।

प्रायश्चित्तमनोहर वीरविजय, सर्वतोभद्रादिचक्रावली, चिन्तामणि और श्राद्धकाशिकादि अनेक संस्कृत ग्रन्थों का पता चलता है, जिनके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हैं। परन्तु अनेक पुरुषों के एक नाम होने की सम्भावना से, बिना पुष्ट प्रमाण के यह नहीं कहा जा सकता कि इन ग्रन्थों के रचयिता और प्रबोध चन्द्रोदयकार एक व्यक्ति थे।

यद्यपि मिश्रजी के निर्वाण काल का भी उसी भांति कोई पता नहीं चलता जिस भाँति उनके जन्मकाल का, तथापि इस बात में कोई सन्देह नहीं मालूम होता कि मिश्रजी ने दीर्घायु लाभ किया।

मिश्रजी का स्वभाव, मिश्रजी की धर्मनिष्ठा, मिश्रजी के विद्या आचारादि के पृथक वर्णन की आवश्यकता नहीं है। उनके स्थूल देह के न रहने पर भी, इस 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रूप में उनकी ज्ञान मयी देह बनी हुई है। जिसे जानना हो दर्पण की भाँति उसमें मिश्र जी के गुण कर्म स्वभाव को प्रत्यक्ष देखले।

श्रीकृष्ण मिश्रजी का अद्वैत सिद्धान्त था, जैसा कि नान्दी के प्रथम श्लोक से प्रकट होता है। उनका मत संक्षेप में यह है कि एक मात्र वास्तविक सत्ता ब्रह्म की है। उस ब्रह्म तत्व के न जानने से उसी में तीनों लोक भासित होते हैं। वास्तव में कुछ है नहीं, एक मात्र ब्रह्म की ही सत्ता है, क्योंकि उसके जानने से यह माया इस भाँति उसमें लय हो जाती है, जिस भाँति माला में सर्प की भ्रान्ति होने पर, माला के ज्ञान से, सर्परूप भ्रान्ति उसी माला में लय हो जाती है।

मिश्रजी ने योग को आत्मसाक्षात्कार का साधन माना है। योग के विषय में आपका मत यह जान पड़ता है, कि जब मनोनिग्रह से हृदय में शान्ति विराजमान होती है, तो आप से आप प्राणवायु रुककर, सुषुम्ना मुख में प्रविष्ट हो ऊर्ध्वगामी होता है, और ब्रह्मरन्ध्र से होता हुआ सहस्रार तक पहुंच जाता है, तब आ

कर आनन्दमय प्रत्यक्ज्योति का साक्षात्कार होता है।

वस्तुतस्तु कवि ने इन्हीं दो श्लोकों में ग्रन्थ भर के निरूप्य विषय को संक्षेप मे कह दिया। शेषं ग्रन्थ इसी का साधन विस्तार है। ग्रन्थकार इस विषय में किसी तर्क या युक्ति को प्रमाण नहीं मानते, क्योंकि जिसके साक्षात्कार मे बुद्धिवृत्ति को भी छोड़ना पड़ेगा, उस में युक्ति या तर्क के पहुंच की सम्भावना ही क्या है। उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि "तूष्णीं चेद्विषयानपास्य भवती तिष्ठेन्मुहूर्तं ततो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिधामविरहात् प्राप्तः प्रबोधोदयः", यद्यपि ग्रन्थकार ने मति के शान्त हो जाने पर भगवती उपनिषत् की उपयोगिता स्वीकार की है, परन्तु वह भी निदिध्यासन के पूर्वावस्था ही तक, और बाद उसके उपनिषद्‌ की भी गति नहीं मानते ; यथा विष्णुभक्ति का आदेश उपनिषद्‌ के प्रति "प्रबोधचन्द्रं पुरुषे समर्प्य वत्से! विवेकेन सह मत्समीपमागमिष्यतीति।"

उनका स्पष्ट मत यह है कि विष्णुभक्ति के कृपा से योगसाधनपूर्व्वक महावाक्योपदेश के विवेकद्वारा ज्ञानोदय होता है, और वही मुक्ति है। केवल ज्ञान कथन न तो मुक्ति ही है, और न मुक्ति का साधन है। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है, उससे कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता, जिसे निश्चय करना हो वह स्वयं करके देखले। ऐसे कट्टर अद्वैतवादी होने पर भी आप स्मार्त वैष्णव थे। विवेक का प्रवेश भी आपने काशी में आदि केशव के स्थान से कराया है, और लिखते हैं।

एष देवः पुराविद्भिः क्षेत्रस्यात्मेति गीयते।
अत्र देहं समुत्सृज्य पुण्यभाजो विशन्तियम्।

साहित्य सम्बन्धिनी प्रौढि के विषय में संस्कृत की विशेष योग्यता न होने से मैं विशेष नहीं लिख सक्ता, परन्तु इतना मैं अवश्य कह सक्ता हूं कि इस नाटक के निर्वेदप्रधान होने पर भी, इसमें जहां तहां प्रसङ्गात् जोई रस कवि के सामने आ पड़ा है उसी को ऐसे खूबी के साथ और ऐसे ओजस्विनी भाषा में लिखा है, कि चित्त तन्मय हो जाता है। व्यञ्जना और ध्वनि से भी ऐसा बारीक काम लिया गया है, कि वैसी बारीकी नवाविष्कृत परिष्कार से भी दुर्लभ है।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक और उसका हिन्दी अनुवाद।

परम नीति विचक्षण भगवान विष्णुशर्मा ने कहा है कि—
" अनन्तपारं खलु शब्दशास्त्रं स्वल्पस्तथायुर्बहवश्च विघ्नाः।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुभेदात् "
शब्दशास्त्र का कोई पारावार नहीं, आयु ठहरी थोड़ी, और विघ्न बहुत से उठ खड़े होते हैं। इस लिये जिस भांति हंस दूध को पानी से अलग कर लेता है, उसी भाँति सार २ ग्रहण कर लेना चाहिये, और विशेष प्रपञ्च में ही पड़े न रहना चाहिये। यदि देखा जाय तो बहुत प्राचीन काल से इसी सिद्धान्त पर महर्षि लोग प्रयत्न करते चले आये हैं। जितने प्राचीन ग्रन्थ देखिये सब के आरम्भ में प्रायः यही कथा पायी जाती है कि " लोगों के सामर्थ्य तथा जीवन के अल्पतापर विचार करके करुणापूर्व्वक इस शास्त्र का सरल संक्षिप्त वर्णन किया जाता है "

करुणामयी स्वयं श्रुति भगवतीने ही महामूढ़ जनों के धर्म प्रवृत्ति के लिये अर्थवाद किया है, स्मृतिकारों ने और भी ऊँचा नीचा दिखलाकर शुभ को ओर मन की प्रवृत्ति करने के लिये, बहुत कुछ प्रयत्न किया है। इस पर काव्यों ने तो इस विषय में कुछ भी न उठा छोड़ा। कहना नहीं होगा कि हमलोगों से विषयलीन पुरुष सत्काव्यों से बहुत कुछ उपकृत हो सक्ते हैं।
महा-मान्य श्रीदेवराज कवि ने कहा है कि—

ते विजयन्ते कवयो येषां कविता सुधाप्रपा परितः।
भवति भवोग्रनिदाघे चेतः पान्थस्य विश्रान्त्यै॥

इस संसार के घोर घाम के तपन से क्षामकण्ठ दीन व्यक्तियों के हृदय को अपने कवितारूपी पौसरे के शीतल जल से सींचने वाले कवियों की ही प्रशंसा है। जिन लोगों के काव्य से भवबन्धन और भी दृढ़ हो, जिनके कुत्सित पदों के प्रभाव से साधारण जनों के मस्तिष्क में विकृति आपड़े ऐसे कवियों की प्रशंसा नहीं है।

एवम् श्लाघ्य कवियों में भी नाटककारों की जो प्रशंसा की जाय सब थोड़ी है क्योंकि जिस बात की आज्ञा श्रुतियों ने विधि-

वाक्य में दी, स्मृतियों ने उन्हीं बातों को भय प्रीति मय वाक्यों से विशद करके दिखलाया, काव्य ने उन्हें बड़े खूबी से रंग देकर सुन्दर सुडौल बनाकर आँख के सामने खड़ा कर दिया; नाटककारों ने उसी में प्राण डालकर उसे कार्य्य में परिणत करके दिखलादिया। अतः नाटककार का उपदेश गुरु के उपदेश की भाँति जीवित उपदेश है। नाटक का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता है, मानो पाठक ने स्वयम् उन घटनाओं को अपने आँखों देखा है, और उसमें का उपदेश मानो उसका निज का किया हुआ अनुभव है।

नाटक के इस उपयोगिता को सम्पूर्ण सभ्यसमाज स्वीकार करता है, और देश की सभ्यता की सूचना उस देश के नाटकों के देखने से ही हो जाती है। और देखने में भी यही आता है कि जब से भारत का अधःपतन आरम्भ हुआ, तब से आजतक संस्कृत का अच्छा नाटक कदाचित् ही कोई बना हो।

प्रबोध चन्द्रोदय संस्कृत के एक प्रधान नाटकों में से है। इसमें पात्रों के स्थान ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक पुरुषों को न मिलकर भावों को मिला है। यहाँ शरीर ही रङ्गभूमि है, विवेक ही नायक है, जितने शुभ गुण हैं वे एक पक्ष के पात्र हैं, और अशुभ गुण समूह दूसरे पक्ष के पात्र हैं। दोनों पक्ष में युद्ध होता है, शुभ गुणों की जय होती है, और अन्ततः जीव को सहज स्वरूप की प्राप्ति होती है।

इस नाटक के रूपक को ऐसा प्राण दिया गया है, कि जितने साधन हैं उनकी शक्ति और उपयोगिता ऐसी सरलता से चित्तपर खिचजाती है, कि चित्त से उतरना कठिन हो जाता है। यदि नाटक के इस पाण्डित्य पर ध्यान दिया जाय, कि नाटककार ने कैसे जटिल विषयों को किस पण्डिताई से सरल करके सजीव किया है, तो यही कहने की इच्छा होती है कि इस नाटक का जोड़ किसी भाषा में भी कहीं नहीं है।

इस नाटक में यह बड़ी विचित्रता है कि इसका खेल देखने के लिये रंगमञ्च (Theatrical Hall) पात्र (Actors) तथा किसी सामान आदिक के एकत्रित करने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही करिये कि आंख मूँद लीजिये, और अपने ही में देखिये,

सब कुछ सामान मौजूद है, खेल भी हो रहा है। और यह भी देख लीजिये कि इस समय किस पक्ष के किस पात्र का खेल हो रहा है। इसी भाँति देखते और नाटक से मिलाते चले जाइये। धीरे २ खेल बिल्कुल असलीयत में परिणत हो जायगा, और जीव की सहज सुख प्राप्ति केवल इसी मार्ग से ही सम्भव मालूम पड़ेगी।

इस समय जब कि बहिर्मुखता की मात्रा उचित से विशेष हो गई है, ऐसे नाटकों की बड़ी आवश्यकता है। यह नाटक पहिले पहल कालिञ्जराधिपति राजा कीर्त्तिवर्मदेव के दरबार में खेला-गया था, और वृद्धों के मुख से सुना है कि महाराज द्विजराज ईश्वरीनारायण सिंह जी. सी. एस. आई. के समय में भी इसका खेल होता रहा। तब से इधर इस नाटक के खेले जाने की बात नहीं सुनी गई। अपनी मातृभाषा की पुष्टि के लिये आवश्यक जान पड़ा कि इसका हिन्दी अनुवाद कर दिया जाय। इसमें यथासाध्य मूल के गद्यांश का गद्य में और पद्यांश का पद्य में अनुवाद करने का प्रयत्न किया गया है। आशा है कि पाठक वृन्द मेरे चूकों की ओर ध्यान न देकर, जोकि निस्सन्देह बड़ी बड़ी और बहुत सी होंगी, भगवान् श्रीकृष्णमिश्र के भावों पर ध्यान देवेंगे।

श्याम सुरभि पय विशद अति गुणद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम यश, गावहिं सुनहिं सुजान॥ (तुलसी)

नाटक निर्माण का समय।

राजा कीर्तिवर्मदेव का शासनकाल सं. ११०७ वि. से आरम्भ हुआ था। उनके शासन काल के प्रथम भाग में ही यह नाटक उनके दर्बार में खेलागया था। परन्तु नाटक के भूमिका से पता चलता है कि नाटक बहुत दिन पहिले से बना तैयार था। यथा 'यत्पूर्वमस्मद्गुरुभिस्तत्र भवद्भिः श्रीकृष्णमिश्रैः प्रबोधचन्द्रोदयम् नाम नाटकम् निर्माय भवतः समर्पितमासीत्'। नाटक के देखने से यही स्थिर होता है कि इसकी रचना श्रीकृष्णमिश्रजी ने काशी में हीं की है, और मिश्र जी का आगमन काशी में १०८७ वि. में हुआ है। अतएव नाटक के रचना का समय १०८७ वि. से लेकर ११०७ वि. के भीतर होना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

संक्षिप्त कथा।

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बखानी॥

एक पुराणपुरुष थे, उनका क्या वर्णन किया जाय, वे साक्षात् आनन्द रूप, तेजोमय, स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप, स्वभाव से ही सौम्य और विषयसुख से विमुख थे। आप अपने में ही मगन रहते थे, कहीं कुछ दूसरे का भान भी न था। अतएव उन्हें स्वराट् और स्वाराज कहना चाहिये।

उन्हें एक स्त्री थी, उसका नाम था माया। वह बड़ी विचित्रा और त्रियाचरित्र में पण्डिता थी, जो तीन काल में सम्भव न हो उसे बात के बात में कर दिखलाने वाली थी। आप स्वयम् नथी और दिखलाई पड़ती थी कि बनी है, इसी से उसे अघटितघटना पटीयसी कहते थे। पुराणपुरुष की स्त्री होने से वह सदा अछूती रही, तिसपर भी उसने एक लड़का पैदा करही लिया और उसका नाम रक्खा मन; फिर तो उसने सातो लोक रचडाले। तत्पश्चात् उसने सोचा कि मैं बूढी हुई, और पुरुष भी मेरे पुरातन हैं और स्वभावतः विषय रस से विमुख हैं, सो पारमेश्वरी गद्दी बेटे को मिलजानी चाहिये।

बेटा मन भी मांका बेटा था। माँ के पास रहते २ उसमें माँ के सब गुण आगये थे उसने नव २ फाटकों के बहुत से पुर रचडाले, और उसमे उस अनादि निधन पुरुष को बहुत प्रकारों से खण्ड २ करके और बाँध २ कर फेंक दिया। अब वह पुरुष उन पुरों में पड़ा हुआ ऐसी गति को प्राप्त हुआ कि जैसा मन करै वैसा आप भी हो जाय, जैसे बिल्लौर पत्थर के निकट जोई वस्तु रखिये उसीके रंग में रँगजाय।

उस मन को दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम प्रवृत्ति और दूसरी का नाम निवृत्ति। सो प्रवृत्ति से महामोह प्रधान एक कुल की उत्पत्ति हुई, और निवृत्ति से विवेक प्रधान दूसरे कुल की। सो चित्त का जेठा बेटा (अहंकार) जाकर, उस खण्डित वृद्ध पुरुष से लिपट गया, और उसके लिपटते ही काम क्रोधादि मक्खी के दल की भाँति उस से चिपट गये। पुरुष बिचारा ऐसी अवस्था में पड़ा हुआ

सोचने लगा कि मैं पैदा हुआ हूँ, मेरी माता है, स्त्री है, घर है, बच्चे हैं, दोस्त हैं, दुश्मन हैं इत्यादि।

यद्यपि यह स्वभाव से ही अनादि अनन्त निर्विकार आनन्द-मय था। उसके स्वरूप में भेद आ नहीं सकता था, तथापि माया-जाल में फँसने से उसका धैर्य्य डग गया, और आप ज्यों का त्यों विद्वान् रहने पर भी मूर्खता के सपने देखने लगा, और स्वराट् स्वाराज होने पर भी महादीन होगया।

इधर विवेक प्रधान कुल से यह देखा न गया। विवेक ने कहा कि यद्यपि स्वयम् पिताजी इस कुचक्र में सम्मिलित हैं, तथापि अवलिप्त, अन्यायी, कुमार्गी गुरु को भी न मानना शास्त्रसम्मत है। विवेक के आठो मन्त्री यमादिक और सुभट वस्तुविचारादिक तथा अन्य कुलजनकी भी यही सम्मति हुई कि कुलवृद्ध महापुरुष का जैसे हो उद्धार करना चाहिये अर्थात् जीवावस्था से फिर इनको ब्रह्मपद में पहुँचा देना चाहिये।

परन्तु जब तक पुरुष के अज्ञान बन्धन न कटें तब तक यह बात सम्भव न थी, और बिना विद्या तथा प्रबोधोदय के अज्ञानबन्धन कट नहीं सकता था। अब प्रश्न यह आपड़ा कि विद्याप्रबोधोदय हो तो कैसे हो। प्रजापति श्रुति कहती थी कि विवेक से उपनिषद् में विद्या नाम की बेटी और प्रबोध नाम का बेटा होगा, परन्तु उनसे दोनो कुल नष्ट हो जावेंगे। विवेक को दो स्त्रियाँ थीं, सो बेटा बेटी का पैदा होना कोई बड़ी बात नहीं समझी गई।

इधर महामोह प्रधान कुल को भी इन लोगों के अभिप्राय का पता चल गया, और उन लोगों ने यह अर्थ लगाया कि ये तीनो लोकों के पुर मेरे पिता के रचे हुए हैं, और बाप का प्यार हम लोगों पर है, इसलिये सब पुरों पर हम लोगों का अधिकार है; सो हमारी बढ़ोत्तरी हमारे सौतेले भाई नहीं देख सकते, इसलिये विवेकादि हमारे नाश के उपाय में लगे हुए हैं। अतएव इनका प्रतिरोध करना चाहिये। इस प्रकार का निश्चय करके रागादिक तो विवेक के पीछे पड़ गये, यहाँ तक कि मति देवी को भी दूषित कर दिया, और महामोह ने कामादिकों के द्वारा मन को बहकाकर विवेक से उपनिषत् देवी को दूर हटा लिया। उपनिषत् पति के

वियोग से आश्रयहीना होकर, साधु वेषधारी यज्ञविद्या मीमांसादि के शरण गई, पर किसी ने उसे बैठने के लिये भी न कहा, प्रत्युत् न्याय और वैशेषिक तो उसे मारने दौड़े। इस दुर्दशा में पड़ी हुई, बिचारी उपनिषत् देवी ने भागकर दण्डकारण्य में मधुसूदन के मन्दिर के निकट अपने बेटी गीता के घर में शरण ली।

अब जो विवेक उपनिषत् देवी को प्राप्त करना चाहते हैं, तो महामोह का समाज इतना बड़ा बाधक हो उठा, कि उनके जीतेजी विवेक और उपनिषत् का संयोग किसी प्रकार से सम्भव न था, और इधर पति का सपत्नी पर विशेष प्रेम देखने से मति देवी के भी रूठ जाने का डर था। सो राजा विवेक हततेज होकर बड़े विषम समस्या में पड़े।

तब तो सब से पहिले उन्होंने मतिदेवी को समझाया, और वे इतने बड़े स्वार्थत्याग पर राजी हो गईं, कि पति सपत्नी के ही होकर रहें, परन्तु कुलवृद्ध स्वामीपुरुष बन्धन से मुक्त हों। तब राजा ने श्रद्धा और शान्ति को उपनिषत् के बुलाने के लिये भेजा, और विराग को इसलिये भेजा कि काम के सखा धर्म को अपने ओर फोड़ ले, और स्यवम् वाराणसी जाने को तैयार हुए, क्योंकि यही थल विद्या प्रबोधोदय के लिये उपयुक्त था। परमकारुणीक भगवान् भवानीपति महाअज्ञानियों को भी यहाँ तारकोपदेश देकर मुक्ति दिया करते हैं।

उधर महामोह ने दम्भ लोभ तृष्णा अनृत को वाराणसी भेजा, पीछे से अहंकार भी आ पहुँचा, फिर स्वयम् महामोहजी भी स्वर्ग छोड़ कर आ डँटे। कलियुग ने तो पहिले से ही आफत मचा रक्खा था, चारवाक मत देहात्मवाद का प्रचार हो चला, सम्पूर्ण काशीविचलित हो उठी, परन्तु विष्णुभक्ति पर कोई चोट नहीं पहुँच सकती थी। इस बीच मद मान ने महामोह के पास, धर्म के फूट जाने और श्रद्धा तथा शान्ति के द्वारा उपनिषत् देवी के प्रबोधे जाने की बात कहला भेजी। उसने तुरन्त श्रद्धा के हरण करने के लिये मिथ्या दृष्टि को भेजा, और शान्ति के बन्धके लिये क्रोध लोभ को भेजा, और काम को आज्ञा दी कि धर्म का विश्वास न करे, और उसे बाँध रक्खे।

मिथ्या दृष्टि ने दिगम्बर सिद्धान्त और सौगत सिद्धान्त को

उभाड़कर श्रद्धाहरण करना चाहा, परन्तु उसका किया यह काम न हो सका। उनके पता देने पर सोमसिद्धान्त से प्रेरित होकर महाभैरवी ने श्रद्धा और धर्म दोनो को हरण कर लिया, परन्तु विष्णुभक्ति के दया से वे दोनो छूट गये।

इस गोलमाल को देखकर, राजा विवेक मति देवी के साथ नैमिषारण्य में इस अभिलाष से तप करने लगे, कि उनका उपनिषत् देवी के साथ समागम हो। विष्णुभक्ति ने मुदितादि चारो बहिनो को आज्ञा दी कि महात्माओं के हृदय में जाकर वास करें, और श्रद्धा द्वारा विवेक से कहला भेजा कि महामोहादिकों से युद्ध करें। राजा यह सुनकर दल बल के साथ काशी गया, तब विष्णुभक्ति शान्ति को लेकर चक्रतीर्थ चली गई। तदुपरान्त युद्ध में विवेक के दल की जय हुई, महामोह योग के विघ्नों को साथ लेकर अन्तर्धान होगया।

अब मन प्राण देने पर उतारू हुए। श्रद्धा से सब हाल पाकर विष्णुभक्ति ने वैयासिकी सरस्वती को मन के समझाने के लिये भेजा। सरस्वती के उपदेश से मन सन्तुष्ट हुआ और अपनी द्वितीया भार्य्या निवृत्ति में रत हुआ। तब विराग भी आगया, यम नियमादि आठो अमात्य भी आगये। मैत्र्यादि चारो बहिनें तथा विष्णुभक्ति भी उपस्थित होगईं।

तब मन स्वस्थ हुआ, और पुरुष से विवेक का समागम हुआ, तब से शान्ति उपनिषत् देवी को ले आईं। उनके उपदेश से पुरुष विचार में स्थित हुआ, और विष्णुभक्ति के आदेश से पुरुष को निदिध्यासन की प्राप्ति हुई, और उपनिषत् के गर्भ से विद्या और प्रबोधोदय का अविर्भाव हुआ। देवी ने विद्या तो मन को दिया और प्रबोधोदय पुरुष को, और आप विवेक के साथ विष्णुभक्ति के पास चलीगईं। विद्या उत्पन्न होतेही मन का संहार करती और महामोह को ग्रसती हुई अन्तर्धान होगई, और पुरुष प्रबोधोदय के प्राप्ति से कृतकृत्य हुआ। फिर विष्णुभक्ति प्रकट हुईं और वर माँगने के लिये कहा। पुरुष को अब निज की कोई कामना रह नहीं गई थी केवल जगत् के कल्याण के कामना से जीवों के लिये प्रेय और श्रेय का वरदान मांगा।

यह अकथ कहानी समाप्त हुई। पाठकों को उचित है कि इसको भलीभाँति मनन करलें। इसमें पुत्र पिता, पति स्त्री, बहिन भाई, शत्रु मित्र आदि सम्बन्ध, जो एक भाव का दूसरे भाव के साथ दिखलाया गया है, सो भलीभाँति विचार करने योग्य है। किसके बुलाने से कौन आता है, कौन किसकी आज्ञा मानता है, कौन किससे बलवान है, कौन किससे माराजाता है, किस क्रम तथा उपाय से शत्रुपर विजय प्राप्ति हुई, इत्यादि एक २ बात बड़े मर्म की हैं, इन्हें सावधान होकर ग्रहण करना चाहिये, जिसमें अपने शरीर के भीतरी युद्ध में आपको विजय प्राप्त करने में सहायता मिले।

आनन्दनिष्यन्दनिरूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धेः।

योपीतिहासादिवदाह साधु तस्मै नमः स्वादु पराङ्मुखाय॥

इस प्रकार के रूपक आनन्द की वर्षा करते हैं, परन्तु अल्पबुद्धि लोगों को इनमें व्युत्पत्तिमात्र होती है, और जो कि ऐसे रूपकों को सीधे २ इतिहास समझकर प्रशंसा करने लगते हैं ऐसे स्वादु शत्रु कवि से नमस्कार किये जाने योग्य हैं।

रामायण और महाभारतादि कथाओं के भी अध्यात्मिक अर्थ किये जाते हैं, परन्तु उन कथाओं का आध्यात्मिक अर्थ के अतिरिक्त लौकिक प्रयोजन भी है, परन्तु इस नाटक में सीधे २ अध्यात्मिक विषय से ही काम लिया गया है।

पुराणों में बहुत स्थानों पर रूपक और अलङ्कारों से काम लिया गया है, क्योंकि विना इनके रस की पुष्टि नहीं होती। परन्तु जब स्वादु पराङ्मुखों से काम पड़जाता है तब गुणग्राहकता तो दूर गई उलटे लेने के देने पड़जाते हैं। यदि कोई स्वादु पराङ्मुख इस नाटक के सम्बन्ध में ही पूछ बैठें कि यदि नट की बात सुनकर काम को क्रोध आगया, यदि काम को सुनने की शक्ति है, तो वह मेरी बातें क्यों नही सुनता? उपनिषत् को यदि बच्चा होता हो, तो वैतालपचीसी और सिंहासन बतीसी विचारी वन्ध्या क्यों रहगईं? तो ऐसे पूछने वाले को विना साष्टाङ्ग प्रणाम किये रसरक्षा के लिये उपायान्तर नहीं, क्योंकि उनकी साहित्यानभिज्ञता और हृदय की नीरसता का हटाना किसी के लिये भी सुसाध्य नहीं है।

प्रबोधचन्द्रोदय ।

पहिला अङ्क ।

ज्ञान नहीं होने से जिसके, पञ्चभूतमय तीनों लोक ।
भासित होते, घोरघाम में जल तरंग से जो बेरोक ॥
बुध के लिये समाजाते हैं यथा हार में पन्नग भोग ।
स्वप्रकाश आनन्दकन्द उस तेजस को भजते हमलोग ॥ १ ॥
रुका सुषुम्ना में मारुत्, तब चला लाँघ कर ब्रह्मद्वार ।
भीतर शान्ति घनी होती जब होता घन आनन्द उदार ॥
योगि शम्भु के भाल नेत्र मिस होता है जिसका अवतार ।
पूर्ण जगद् व्यापक उस प्रत्यक् ज्योती का हो जयजय कार ॥ २ ॥

(नान्द्यनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—बहुत बढ़ाने से क्या ? जिसके चरणकमल की आरती राजाओं के मुकुटमणियों के ज्योतियों द्वारा हुआ करती है, और जिसे प्रचण्ड शत्रुवों के वक्षःस्थल विदारण के लिये साक्षात् नृसिंहावतार, और बड़े २ राजाओं के एकार्णव में से वसुधा के उद्धार करने में साक्षात् वाराहावतार कहना चाहिये, और जिसके कीर्ति-लतापल्लव से दिग् विलासनियाँ शोभायमान हैं, और जिसके प्रताप की आग दिग्गजों के कर्णरूपी पंखे के हवा से धधका करती है, ऐसे महानुभाव श्रीमान् गोपाल ने आज्ञा दी है कि 'सहज सुहृद् राजा कीर्तिवर्मदेव के दिग्विजय के कार्य्य में लगे रहने से, ब्रह्मानन्द रस से हटे हुए; हमलोगों के कितने दिन विषयरस से दूषित की भाँति बीतगये, परन्तु अब हमलोग कृतकृत्य हैं, क्योंकि—

नरपति के विपक्ष भूपों का हुआ घना संहार ।
पृथ्वी को पालन करते हैं सज्जन सचिव उदार ॥
सिन्धुमेखला वसुधा में दृढ़ हुआ राजविस्तार ।
पूजा जिसको भूपतियों के मुकुटों ने लाचार ॥ ३ ॥

सो अब हमलोग शान्तिरसप्रधान अभिनय से जी बहलाना चाहते हैं। पहिले ही से हमारे गुरु पूज्यपाद श्रीकृष्णमिश्र ने जो प्रबोध-चन्द्रोदय नामक नाटक बनाकर आपलोगों के हवाले किया था, उसे आज राजा श्रीकीर्तिवर्मा के सामने आपलोग खेलिये। और राजा को दरबारियों के साथ, उसके देखने की लालसा भी है, अच्छा तो फिर जाऊँ और सुघर घरनी को बुलाकर गाना बजाना आरम्भ कर दूँ। (घूमकर नेपथ्य के ओर देखता है। आर्य्ये इधर तो आना।

(नटी का प्रवेश)

नटी- मैं यही हूँ, आर्य्यपुत्र आज्ञा दें, कौनसी सेवा करूँ।

सू-आर्य्ये, आप जानती ही हो कि:—

वैरिवृन्दवाहिनी महावन में व्यापित हो।
जिसकी प्रबलप्रतापज्वालमाला काशित हो।
फैली अवनि अकाश, कहूँ अवकाश न तिलभर।
रही कीर्ति जग छाय, तीव्र तरवार मात्र कर।
धरि, नरपति गण विजय करि, फिर से जिस गोपाल ने।
कीर्तिवर्म नृप को दिया सम्राट् टीका भाल में॥ ४॥

और भी,

गाती हैं अबभी सभी रण मही जाके यशों को सदा।
झोंके अन्धड़ के घुसैं मृत गजों के खोपड़ों में यदा॥
माती यौवन जोर मे निशिचरी ताली बजाती तदा।
बाजैं खोपड़ियाँ खनाखन, खड़ी नाचैं पिशाची मुदा॥५॥

अब वेही शान्तिपथ पर आरूढ़ हुए हैं, अतएव अपने जी बहलाने के लिये उन्होंने प्रबोध चन्द्रोदय नाम के नाटक के खेलने की आज्ञा दी है, सो नटों को आज्ञा दो कि वेष साजने में लग जावैं।

नटी-आर्य्यपुत्र, बड़ा ही आश्चर्य्य है, बड़ा ही आश्चर्य्य है। जिन्हों ने कि केवल अपनी भुजाओं के ही बल से सम्पूर्ण राजमण्डल का अनादर किया, अपने प्रचण्ड भुजदण्ड से कान तक खैंचे हुए कठिन कोदण्ड द्वारा बाणों की वर्षा करते हुए, सवारों

२

को जर्जरित कर दिया, और शस्त्रों के बौछार से सहस्त्रों पर्वताकार हाथियों को धराशयी बनाया; और जिसके घूमते हुए मन्दर के से भुजदण्ड के चोट से पैदलों की सेना चक्कर खाने लगी, और जिसने कि कर्ण के सेना को मन्थन करके; इस भाँति जयलक्ष्मी प्राप्त की, जिस भाँति पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने क्षीरसिन्धु मथकर लक्ष्मी प्राप्त की थी, ऐसे उद्भटवीर को इस समय ऐसा उपशम कहाँ से होगया, जो कि सम्पूर्ण मुनिगणों से भी श्लाघनीय है।

सूत्र–आर्य्ये, ब्राह्मज्योति स्वभाव से ही सौम्य है, किसी कारण से कुछ समय के लिये यदि उसमें विकार भी आजाय, तौभीफिर अपने स्वभाव पर आजाती है, और इनका क्रोध तो केवल इस निमित्त था, कि चंदेल राजाओं का आधिपत्य जिसे कि कालाग्नि रुद्र के सदृश चेदिपति कर्ण ने उखाड़ डाला था, स्थिर हो जावे। देखोः—

जिस समुद्र ने प्रलय पवन झोंके से शोभित होके।
आप्लावित करदिया पर्वतों को, मर्य्यादा खोके॥
वही सिन्धु अपने स्वभाव पर, उचित समय में आया।
'मर्य्यादा थिरता प्रसाद' इन गुणगण को दिखलाया॥६॥

और यह भी बात है कि भगवान् नारायण के अंश से उत्पन्न होकर, ऐसे पुरुषार्थी लोग प्राणियों के हित के लिये, पृथिवी में अवतीर्ण होते हैं, और अपना कार्य्य करके फिर शान्त होजाते हैं आप स्वयम् परशुराम का ही उदाहरण ले लें!

जिसने बार इकीस लहू की नदी बहाया।
नृपति मांस मस्तिष्क पङ्क मय कूल बनाया॥
किया तहाँ असनान, दिया पितरों को पानी।
जिसके कठिन कुठार धार की विदित कहानी॥
बाल वृद्ध वनिता निधन में भी जो निर्दय महा।
कन्ध कूट नृप यूथ के काटन में अति पटु रहा॥ ७॥

नृपकुल मूल वहाय, निजवल से भूभार हरि।
जामदग्न्य ऋषिराय, रिसि परि हरि अब हरि भजत ॥८॥

उसी भाँति ये भी अपना कर्त्तव्य कर चुकने पर अब उपशम को प्राप्त हुए हैं।

कर्ण जीति अति मीति, दियो कीर्तिवर्महिं विभव।
यथा मोह नृप जीति, प्रकट्यो वोध विवेक नृप ॥ ९ ॥

(नेपथ्य में)

अरे पापी नट! कैसे हमलोगों के जीते ही जी तू विवेक से हमारे स्वामी महामोह के पराभव का उदाहरण दे रहा है।

सूत्र०-(घबड़ाकर देखता है) आश्चर्य ! इधर तो आना।

पुलकित भुज से जो करता है रति का आलिङ्गन वेढङ्ग।
ऊँचे २ भरे कुचों का भार दवाता जिसका अङ्ग॥
मद से भरे घूमते जिसके नयन कमल हैं सो श्रीमान्।
काम आरहे हैं अति सुन्दर जगको देते मोद महान ॥१०॥

मालूम होता है कि मेरी वातों को सुनकर इन्हें रोष आगया है, सो यहाँ से नव दो ग्यारह होना ही हमारे लिये भला है (दोनों जाते हैं)।

प्रस्तावना।

(यथानिर्दिष्ट काम और रति का प्रवेश)

काम-(क्रोध से आः पापीनट इत्यादि वार २ पढ़ता है) जानता नहीं रे अधम नट कि—

तव लौं शास्त्र विवेक रह बुधजन के हियमाँहि।
मृगनयनी के नयन शर जवलौं लागत नाहिं ॥ ११ ॥

और भी—रम्य महल, अरु नई नवेली, अलिवृन्दों से मुखर लता।
खिली मल्लिका, सुरभि पवन वह, रजनी राजति चन्दछटा॥
मेरे इस अमोघ अस्त्रों की, जव तक है जय चारो ओर।
कहाँ प्रवोधोदय है तव तक, अरु विवेक वैभव का जोर? ॥१२॥

रति–आर्य्यपुत्र, मुझे अनुमान होता है कि महाराज महामोह का वैरी विवेक बड़ा बलवान है।

काम–प्रिये, स्त्रीजाति स्वभाव से भीरु होती हैं, नहीं तो भला विवेक से भय कैसा?

हे वरोरु है! मेरा यद्यपि बाण शरासन फूलोंका।
सकल सुरासुर को कहता हूँ, क्या बूता मछहूलों का॥
कोई नहीं जगत् में ऐसा है समर्थ, जो रह जावै।
मेरे आदेशों के बाहर, फिर भी कुछ धीरज पावै॥ १३॥

देखो–इन्द्र हुए थे जार अहल्या के, धाता तनया के भी।
और निशाकर देव फँसे थे अपने गुरुपत्नी से भी॥
कौन जगत् में जिसका मैंने नहीं कुमग में पग डाला?
जग के उन्मादन करने में शर मेरा सब से आला॥ १४॥

रति–आर्य्य, बात तो ऐसी नहीं है, तथापि ऐसे शत्रु से डरना चाहिये जिसके बड़े सहायक हों, क्योंकि मैं सुनती हूँ कि उनके यम नियमादिक अमात्य बड़े बलवान हैं।

काम–प्रिये, जो तू राजा विवेक के यमादिक आठो अमात्यों को बलवान समझ रही है, सो ये विचारे तो,हमलोगों के सामना पड़ने के पहिले ही, आपस में फूट जावेंगे।

कहां अहिंसा क्रोध लखि, ब्रह्मचर्य्य मोहि देखि।
सत्यास्तेयापरिग्रह, कहाँ लोभ को पेखि?॥ १५॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि तो केवल निर्विकार चित्त से साध्य हैं इन्हें उखाड़ना तो यारों के बाएँ हाथ का काम है। इनके लिये तो स्त्री ही कृत्या है। सो ये सब तो सदा मेरे निगाह के नीचे रहते हैं, क्योंकि

देखना या बोलना हँसना वो मिलना जांय दूर।
कामिनी के ध्यान से भी मन विकृत होगा जरूर॥ १६॥

और विशेषतः यम नियमादिकों पर तो जहाँ हमारे स्वामी के

प्यारे मद मात्सर्य्य दम्भ लोभादिक छूटे, कि तहाँ राजा के मन्त्री अधर्म जी का इन सबों ने आश्रयण किया।

रति–आर्य्यपुत्र, मैंने सुना है कि आपलोगों का और विवेक शम दमादिकों का उत्पत्तिस्थान एक ही है।

काम–आः प्रिये, उत्पत्तिस्थान ही को एक क्यों कहती हो, हमलोग एकही बाप के बेटे भी हैं।

ब्रह्म संग माया को भयउ बिहार।
विश्वविदित मन जनमेउ पाहिली बार॥
जो इन तीनों लोकों का करतार।
मेरे दोनों कुल का सिरजनहार॥ १७॥

उनकी दो धर्मपत्नियाँ हैं। एक का नाम प्रवृत्ति और दूसरे का नाम निवृत्ति। उनमें भी प्रवृत्ति से उस कुल की उत्पत्ति हुई, जिसमें महामोह प्रधान हैं, और निवृत्ति से दूसरे कुल की जिसमें विवेक की प्रधानता है।

रति–आर्य्यपुत्र, यदि यही बात है तो भाई भाई होकर आपलोगों में इतना वैर क्यों है?

काम–प्रिये! मचत सहोदर बीच बड़ि एकामिषभव रार।
महिहित कुरु पाण्डव लरे, भयो भुवन संहार॥१८॥

यह सब जगत् मेरे बाप की कमाई है। और उनका प्रेम हम-लोगों पर है, इसलिये सभी ओर हमीं लोगों का बोलबाला है, और उन सबों का प्रचार बहुत कम है। अब उन सबों ने पिता के सहित हमलोगों की जड़ उखाड़ना निश्चय किया है।

रति–इन पापियों का सत्यानाश हो, क्या इतने ही वैर से इन सबों ने इतना बड़ा पापकर्म करना चाहा है। अच्छा, तो आपलोगों ने इसका उपाय क्या सोचा है?

काम–प्रिये, इसमें एक रहस्य है।

रति–आर्य्यपुत्र, उसे आप मुझे क्यों नहीं बतलाते?

काम–प्रिये! स्त्री होने से तुम्हारा स्वभाव भीरु है, इसलिये इन पापियों के दारुण कर्मों की चरचा तक तुमसे मैंने नहीं की

रति-सो कैसा है?

काम-कोई डरने की बात नहीं है, नाड़ी छूटने पर चन्द्रोदय की आशा की भाँति उनकी आशा है, और उसकी आधार भी यही किंवदन्ती है, कि हमारे कुल में कालरात्रि के तुल्य एक विद्या नाम की राक्षसी उत्पन्न होगी।

रति-हा धिक्, हमारे कुल में और राक्षसी, मेरा तो कलेजा काँपता है।

काम-प्रिये, डरने की कोई बात नहीं है, क्योंकि किंवदन्ती ही किंवदन्ती है।

रति-अच्छा तो वह राक्षसी करेगी क्या?

काम-प्रिये, एक ऐसी प्राजापत्य श्रुति है कि:—

संगरहित पूरुष की गृहिणी, माया जिसका नाम।
आप अछूती, मन जनमाया, क्रम से लोक तमाम।
उससे होवेगी वह कन्या विद्या विपुलाहार।
तात मात भाई सब कुल को, भच्छेगी इकबार॥ १९॥

रति-(डर से काँपती है) आर्य्यपुत्र, बँचाओ, बँचाओ। (ऐसा कह कर भर्ता से लिपट जाती है)

काम-(स्पर्श सुखानुभव नाट्य करता है) (स्वगत)

जहाँ पुलक अङ्कुर अति सोहत कल कङ्कण झनकार।
जहाँ सभय कम्पित ऊंचे कुच संग सुभगता सार॥
जहाँ पड़ी है बाँह गले में, मृगनयनी सत्कार।
अलिङ्गन आनन्द मोह का करता है सञ्चार॥ २०॥

(प्रकट-दृढ़ आलिङ्गन करके) प्रिये! डरो न, डरो न, हमलोगों के जीते जी विद्या कैसे उत्पन्न हो सकती है?

रति-भला, क्या आपके विरोधी लोग चाहते हैं कि ऐसी राक्षसी उत्पन्न हो।

काम-हाँ, उनको अभीष्ट है, उसकी उत्पत्ति विवेक और उपनिषद् देवी से होनेवाली है, और उसके साथही साथ प्रबोध-

चन्द्र नाम का उसको भाई भी होगा, सो ये सब शमादिक उसी उद्योग में लग रहे हैं।

रति–आर्य्यपुत्र, ये दुर्विनीत, अपने विनाशकारिणी विद्या की उत्पत्ति कैसे पसन्द करते हैं।

काम–प्रिये, जो पापी कि अपने ही कुल के नाश में लगे हुए हैं, वे अपने और पराये के प्रत्यवाय को क्या समझते हैं।

देखो–जासन नीच बड़ाई पावा। सो हठि प्रथमहि ताहि नसावा।
धूम अनल सम्भव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई। २१(तुलसी)

(नेपथ्य में) अरे पापी दुरात्मा, तू उलटा हमी लोगों को कैसे पापी ठहराता है:—

विधिनिषेध जानै नहीं, दुराचार रत होय।
त्यागो ऐसे लिप्त को, जौ निज गुरु भी होय॥ २२॥

पौराणिक लोग इस पुराण के वचन को उदाहरण के रूप में दिया करते हैं। हमारे पिता ने अहंकार के कहने में आकर जगत्पति अपने पिता कोही बाँध रक्खा है, और मोहादिकों ने उस बन्धन को और भी दृढ़ कर रक्खा है।

काम–(देखकर) प्रिये, ये हमारे कुल में सब से बड़े विवेक हैं, सो मति देवी के साथ इधर ही चले आ रहे हैं।

ये वही हैं :—

जिसके शोभा को रसिक प्रिय, रागादिक ने हरण किया।
अपमानित से हुए क्षीणतन, पर धीरजधुर वहन किया॥
उनही रागादिक से कलुपित, मति देवी हैं जिनके सङ्ग।
मानो चन्द घने कोहिरे में, उदित चाँदनी भी बेरङ्ग॥ २३॥

सो यहाँ ठहरना हमलोगों को उचित नहीं है (दोनों जाते हैं)

विष्कम्भ।

(राजा विवेक और मति का प्रवेश)

राजा–(चिन्ता करके) प्रिये, इस दुर्विनीत छोकड़े काम की मतवाली बातें तुमने सुनी, देखो, उलटा हमी लोगों को पापी ठहरा रहा है।

मति–आर्य्यपुत्र, क्या लोग अपने दोषों को देखते हैं ?
राजा–देखो,

अहंकार के साथी शठ मद आदि।
पाप दुष्ट मिलि बांध्यौ देव अनादि॥
चित् आनन्द निरञ्जन जगपति जोइ।
दीन हुए दिन काटत है प्रभु सोइ॥ २४॥

सो ये सब तो पुण्यात्मा हैं, और पापात्मा हैं हम लोग, जो उन के छोड़ाने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। अहै! हम तो इन दुरात्माओं से हार गये।

मति–आर्य्यपुत्र, सुनती हूँ कि परमेश्वर स्वभाव से ही आनन्द-स्वरूप हैं, नित्यप्रकाश हैं, और उनका प्रचार तीनों लोकों में बना है। ऐसे परमेश्वर को, इन निगोड़ों ने बाँधकर,महामोह सागर में कैसे डालदिया ?

राजा–प्रिये,

शान्त उच्च अति स्वच्छ हृदय जिसका है सुन्दर।
बुद्धिमान सरनाम विनय नय निपुण धीर धर॥
सब विधि पूरण काम, कामवश हो तजता है।
धीरज का भी नाम, अवगुणों को भजता है॥
तिय से बहकाया हुआ निज स्वभाव को भी तजै।
ज्यौं माया के वश पड़ा स्वयम् पुरुष, उसको भजै॥ २५॥

मति–आर्य्यपुत्र, जिस भाँति अन्धकार की लेखा भगवान् सहस्र-रश्मि भास्कर का अनादर करै, उसही भाँति माया भी उस कल्लोल वाले महाप्रकाश के समुद्र का अवहेलन कर सकती है।

राजा–प्रिये! यह माया तो वेश्याओं की भाँति अविचार से सिद्ध होती है, असती होने पर भी अनेक प्रकार के भावों को दिखलाती हुई परपुरुष को ठगा करती है:—

देखे–स्फटिक मनि से देव को, जो रहित सकल विकार।
अकथनीया विकृति मे, इसने दिया है डार॥

कान्ति में उसके तनक भी हो सका न विगार।
तदपि धैर्य्य डगा दिया, ऐसी बड़ी बदकार॥ २६॥

मति–आर्य्यपुत्र, क्या कारण है कि ऐसे उदारचरित को यह निगोड़ी फुसला लेती है?

राजा–किसी प्रयोजन या कारण से माया ऐसा नहीं करती, बल्कि स्त्री पिशाचिनियों का ऐसा स्वभाव ही होता है।

देखो–मोह लेती हैं, वो दीवाना बना देती हैं।
दण्ड देती हैं, कभी चिटिकियां भी लेती हैं॥
खेल करती हैं, कभी हाय रुला देती हैं।
एक चितवन में कई भाव दिखा देती हैं॥
पैठ जाती हैं रसीलों के कलेजे में तुरत।
फिर तो बेचारे को सौ जन्म भुगा देती हैं॥ २७॥

और एक दूसरा कारण भी है।

मति–और वह कारण क्या है?

राजा–उस दुराचारिणी ने यह सोच लिया है कि अब मैं बूढ़ी हुई, जवानी के दिन निकल गये। यह भी पुरातन पुरुष हैं, और स्वभाव से ही विषयरस से रूखे हैं, सो अपने लड़के (मन) को परमेश्वरी गद्दी दिलवा दूं। इधर माँ के साथ रहते २ बेटे में माँ के सब गुण आगये थे, उसने माता के अभिप्राय को जान लिया, और नवद्वार के बहुत से पुर रच डाले।

तिन मँह दीन्हयौ डारि, बहुधा खण्डि अखण्ड को।
अवानिज कृत छरभार, माणि इव उनही में धरत॥ २८॥

मति–(चिन्ता करके) आर्य्यपुत्र, जैसी माता थी बेटे भी वैसेही हुए।

राजा– फिर तो उनका नाती, अहंकार, जो कि चित्त का जेठा बेटा है, उन से लिपट गया, और तब तो वह ईश्वर–

मैं जन्म्यौ, मोहि मातु पिता तिय तनय धाम धन।
ये मेरे हैं, शत्रु, मित्र, विद्या, बल, परिजन॥

यौं ही यह विद्वान चित्तफुरना से कल्पित।
देखत बहु विधि स्वप्न, अविद्या ते अति निद्रित ॥ २९ ॥

मति–आर्य्यपुत्र, ऐसे बेहोशी के निद्रा से फिर परमेश्वर को प्रबोध कैसे उत्पन्न होगा ?

राजा–(लज्जा से मुख नीचा कर लेता है)

मति–अति लज्जा से आप ने सिर क्यों नीचा कर लिया ? बोलते क्यों नहीं ?

राजा–प्रायेण स्त्रियों के हृदय में डाह होती है। इससे मैं अपने को अपराधी सा समझता हूँ।

मति–आर्य्यपुत्र, मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो कि भर्ता के धर्म्य वा काम्य प्रवृत्ति में बाधा डालती हैं।

राजा–प्रिये,

जो विरह विकल माननी उपनिषत् रानी।
ह्वै शान्त्यादिक अनुकूल मिलावैं आनी॥
तुम भी चुप बैठो, छोड़ विषय को छनभर।
हो बोध उदय, तब तीन अवस्था तजकर ॥ ३० ॥

मति–यदि इस भाँति बन्धनों से जकड़े हुए कुलप्रभु का छुटकारा हो सके तो आर्य्यपुत्र उसी (उपनिषत्) के होकर रहैं, मुझे सन्तोष है।

राजा–प्रिये, यदि तेरी इतनी कृपा है, तो हमलोगों का मनोरथ सिद्ध हुआ रक्खा है, यथा–

बाँधा काटा, जिनने उस आदि पुरुष को।
पुरगन में बाँटा, शाश्वत जगदीश्वर को॥
उन ब्रह्मभिदों का, विद्या द्वारा विधिसे।
हो मरण पराछित, ब्रह्मैकता हो फिरसे ॥३१॥

अच्छा, तो अर्थ सिद्धि के लिये फिर शमादिक को नियुक्त करूं

(पटाक्षेप)

दूसरा अंक।

(दम्भ का प्रवेश)

दम्भ-महाराज महामोह की आज्ञा है कि 'बेटा दम्भ, विवेक ने अमात्य के सहित प्रवोधोदय के लिये प्रतिज्ञा की है, और तीर्थों में शमदमादिक भेजे भी गये हैं। सो हमलोगों का कुलक्षय उपस्थित हुआ है, इसका उपाय आपलोगों को सावधान होकर करना चाहिये। पृथ्वी में वाराणसी नामकी नगरी परममुक्तिक्षेत्र है, आपलोग वहां जाकर चारो आश्रमों के मोक्षमार्ग में, जैसे बाधा उपस्थित हो वैसा करिये'। सो मैंने तो वाराणसी (बनारस) पर खूबही क़ब्ज़ा जमाया। अब मेरे अनुयायी लोग—

वारविलासिनि के घर मे अधरासव पान किये सुख से।
चांदिनि रात कटी मदनोत्सव मे ललनागन संग वसे॥
प्रातहिं दिक्षित हैं, सरवज्ञ हैं, पावक सेवक हैं मनसे।
तज्ञ हैं, तापस हैं, मुनि हैं, इन धूर्तनने सब लोग झँसे॥१॥

(देखकर) यह पथिक गंगा उतर कर इसी ओर आ रहा है, यह तो ऐसा है कि:—

जलता है अभिमान से, ग्रसता ज्यौं त्रयलोक।
वागजाल से धर्षता, उपहाँसी का ओक॥ २॥

मैं तो समझता हूँ कि यह दक्षिण राढ़ा प्रदेश से आया होगा, तो इससे आर्य्य अहंकार का हाल लगेगा। (घूमता है)

(यथानिर्दिष्ट अहंकार का प्रवेश)

अहंकार-अरे संसार मूर्खों से भरगया है,

न तो प्रभाकर मत को जाना, लिया न कौमारिल का नाम।
शारिक गिरा तत्व नहिं जाना, फिर वाचस्पतिका क्या काम॥
पढ़ा न सूक्त महोदाधि, देखा महा व्रती भी कभी नहीं।
वस्तु विचार सूक्ष्म बिनु नरपशु कैसे रहते स्वस्थ सही?॥३॥

(देख कर) अरे ! ये तो केवल पढ़ते हैं और पढ़ाया करते हैं, उसके अर्थ से इनसे कोई वास्ता ही नहीं। ये वेद के नाशक हैं (फिर दूसरी जगह जाकर) अरे ! इन सबों ने तो केवल खाने के लिये सिर घुँटाकर सन्यास लिया है, ये अपने को पण्डित मानने-वाले, वेदान्तशास्त्र की दुर्दशा कर रहे हैं। (हँसकर)

उलटो कहत नितान्त, मानत नहि प्रत्यक्ष को।
यदि प्रमाण वेदान्त, कहा बिगार्‍यो बौद्ध ने ॥४॥

सो इनकी बात सुनने से भी बड़ा पाप होता है (फिर दूसरी जगह जाकर) ये शैव पाशुपत आदिक हैं, इन्होंने अक्षपाद के मत को रगड़ डाला है, ये पशुपाखण्डी हैं। इनसे बात करने में भी मनुष्य को नरक होता है, सो दूर रहते हुए ही, इनकी ओरसे निगाह फेर लेनी चाहिये।

(फिर दूसरी ओर जाकर) ये तोः—

गंगातीरतरंगशीतल शिला पै है जमा आसन।
बैठे हैं, कुशदंडहस्त, वेणू के हैं धरे वासन॥
फेरैं चंचल अंगुली पटु वडी रुद्राक्ष माला महा।
दानों के सँग खैंचते धन धनी के, ढोंगवाले सदा॥५॥

(फिर दूसरी जगह जाकर) ये त्रिदण्ड के नाम से कमाने खाने वाले द्वैत और अद्वैत दोनो मार्ग से पतित हो गये हैं। (दूसरी ओर जाकर और देखकर) अरे ! यहां तो द्वार के सामने बड़े २ ऊँचे बांसों के डारे पर कचारे हुए हजारों उज्ज्वल बहु मूल्य वस्त्र फहरा रहे हैं। कहीं पर कृष्णमृग का चर्म, कहीँ पर ऊखल, कहीं पर मूशल, कहीं लोढ़ा, कहीं समिधा, चारो ओर यज्ञ की सामग्री पड़ी हुई है, तमाम आकाश निरन्तर आहुति के गन्ध और धूएँ से भरा हुआ काला हो रहा है। यह गंगा के निकट ऐसा किसका आश्रम मण्डल है ? अवश्य यह किसी गृहमेधी का घर है। ठीक है मेरे रहने योग्य है, पवित्र है। यहाँ दो तीन दिन के लिये डेरा जमादें। (प्रवेश करता है) (देखकर) अरे,

ठोढ़ी, मस्तक, ओठ, पीठ, उर में, जानु, गले, गाल में ।
जंघा, कुक्षिक मे, किये तिलक है, श्वेताखली के घने ॥
चोटी मे, कर मे, तथा कमर मे, क्या ही हिलैं कान में ।
दर्भों के अँखुए, मनो तन धरे, हैं दम्भ जी ध्यान में ॥६॥

अच्छा इसके पास तो चलैं (जाकर) आपका कल्याण हो (दम्भ हुंकार से मना करता है)

(वटु का प्रवेश)

बटु-(घबड़ाकर) ब्राह्मण देवता, उधर ही ठहरो, विना पैर धोये इस आश्रम मे न आना ।

अहंकार-(क्रोधसे) अरे पापी, क्या हम तुरुष्क देश (Turkey) में आपड़े हैं, कि यहां श्रोत्रिय अतिथियों का आसन पाद्य से भी गृहस्थ सत्कार नहीं करते ।

दम्भ-(हाथ के इशारे से आश्वासन देता है)

वटु-आराध्य पाद की यह आज्ञा होती है, कि आप दूर देश से आ रहे हैं, आपका कुल शील हमलोग नहीं जानते ।

अहंकार-क्या अब हमलोगों के कुल शीलादि की भी परीक्षा होगी ? सुनो ।

राष्ट्रों में अति उच्च गौड़, उसमे राढ़ा पुरी उत्तम ।
नामी सेठ जहाँ बसैं, द्विजन मे मेरे पिता वित्तम ॥
अच्छे पुत्र महा कुलीन जिनके जिनको जगत् जानता ।
प्रज्ञा शील विवेक धैर्य्य नय मे, मेरी बड़ी श्रेष्ठता ॥ ७ ॥

(दम्भ वटु की ओर देखता है)

वटु-(ताँबे का घड़ा लेकर) भगवन् पैर धोडालैं ।

अहंकार- खैर, ऐसाही सही । (पैर धोकर आगे बढ़ता है) ।

दम्भ-(दाँत पीसकर बटु की ओर देखता है)

बटु-अभी उधर ही रहिये, हवा मे पसीने के कण फैल रहे हैं ।

अहंकार-यह ब्राह्मण्य तो अपूर्व है ।

बटु-ऐसी ही बात है, कि:-

चरण परस नहि करि सकत, नृप मणि मुकुट मरीच।
करत आरती परत तब, पदतल भूतल बीच ॥ ८ ॥

अहंकार-(स्वगत) अरे, इस देश में तो तमाम दम्भ का अधिकार है। (प्रकाश) अच्छा, तो इसी आसन पर बैठता हूँ (बैठना चाहता है)।

वटु-ऐसा न करो। आराध्य पाद के आसन पर दूसरा नहीं बैठ सकता।

अहंकार-अरे पापी, क्या दक्षिण राढ़ा प्रदेश से आये हुए, प्रसिद्ध शुद्ध ब्राह्मण भी, इस परं नहीं बैठ सकते? सुन रे मूर्खः—

मा वैसे घर की न थी, इसलिये, सच्छ्रोत्रियों की सुता।
ला व्याहा, तबसे स्वयम् जनक से मेरी बढ़ी श्रेष्ठता ॥
साढू की नतनी रही, जब उसे मिथ्या लगा शाप हा।
मैंने छोड़ दिया, उसी वजह से, प्यारी प्रियाको तदा ॥९॥

दम्भ-ब्रह्मन्, ऐसा होने पर भी, हमलोग तो आपका वृत्तान्त नहीं जानते, और इधरकी सुनिये;

एक वार मैं ब्रह्म लोक में चला गया करने दर्शन।
छोड़ छाड़ ऊंचे आसन को खड़े हो गये सब मुनि गन।
ब्रह्मदेव ने शपथ दिलाकर, अपनी गोदी बिठलाया ॥
गोवर से परंतु पहिलेही, था उसको भी लिपवाया ॥१०॥

अहंकार-(स्वगत) वाहरे दाम्भिक ब्राह्मण की अत्युक्ति (सोचकर) या हो न हो, यही दम्भ तो नहीं है, होने दो, (प्रकट) आः इतने ही का तुम्हे इतना गर्व है (क्रोध से)

अरे कौन है इन्द्र, कहाँ ब्रह्मा रहता है।
मुनिगन हैं उत्पन्न कहाँ से, क्या बकता है ॥
मेरा तप बल देख, सैकडों इन्द्र गिराऊँ।
ब्रह्मा गिरैं अनेक, खैंच मुनियोंको लाऊं ॥११॥

दम्भ (देखकर-आनन्द से) अरे ये तो हमारे पितामह अहंकार हैं। दादाजी मैं लोभ का वेटा दम्भ हूँ, आपको प्रणाम करता हूँ।

अहंकार-वेटा बहुत दिन जीयो। अभी तुम बच्चे हो। मैंने तुम्हें द्वापर के अन्त में देखा था। आज बहुत दिनों वाद देखादेखी हुई, अब मैं वूढ़ा भी होगया इसलिये पहिचान न सका। कहो तुम्हारा बच्चा अनृत कुशल तो है।

दम्भ-जी हाँ, वह भी महामोहके आज्ञा से यहीं है। उसके विना तो मैं एक मुहूर्त भी जी नहीं सकता।

अहंकार-कहो; तुम्हारे माता पिता, तृष्णा और लोभ कुशल तो हैं?

दम्भ-वे भी महामोह की आज्ञा से यहीं हैं, उन दोनो के विना, तो मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता दादाजी ने किस प्रयोजन से यहाँ आने की कृपा की है?

अहंकार-वेटा, मैंने विवेक के हाथ से महामोह का अनिष्ट होना सुना है, उसी से इस वृत्तान्त के जानने के लिये आया हूँ।

दम्भ-दादाजी का स्वागत हो, यहाँ तो इन्द्रलोक से महाराज के आगमन की ख़बर है। लोग कहते हैं, कि महाराज ने वाराणसी राजधानी में ही वसना निश्चय किया है।

अहंकार-तो महामोह के सर्वात्मना वाराणसी में ठहरने का कारण क्या है?

दम्भ-दादाजी, विवेक के वखेड़े से और क्या?

जन्मभूमि विद्या प्रवोध की, अविनाशी शिव की काशी।
कुलच्छेद के लिये वसेगा, यहाँ वही सत्यानाशी ॥१२॥

अहंकार- (सभय) यदि ऐसी बात है, तब तो इसका प्रतीकार नहीं हो सकता।

अन्तकाल में करुणा करके गंगाधर, दे देते हैं।
भवभयतारक ज्ञान नरों को, जो कुछ नहीं समझते हैं॥१३॥

दम्भ- यह सब ठीक है, तथापि काम क्रोध के वशीभूत लोगों

के लिये ऐसा सम्भव नहीं है।

जिनके दोउ कर, दोउ चरण, मनहु सुसंयत होय।
विद्या, तप, अरु इन्द्रियहु लहै तीर्थ फल सोय ॥१४॥

(नेपथ्य में) भाई रे, महाराज महामोह की सवारी आती है, इसलिये:—

लीपो चन्दन से वड़े माणि जड़े जो चौतरे हैं बने।
पानी का छिड़काव हो, भवन में छूटैं फुहारे घने।
बाँधो वन्दनवार चारु. जिनमें मोती गुही झालरैं।
फैलैं चित्रपताक इन्द्रधनु से आकाश शोभा धरै ॥ १५ ॥

दम्भ—दादाजी, महाराज आगये, सो हम लोगों को आगे चलकर उन्हे लेना चाहिये।

अहंकार—अच्छा चलो (दोनों जाते हैं)

(प्रवेशक)

(परिवार सहित महामोह का बड़े ठाट बाट से प्रवेश)

महामोह—अहो (हँसता है) इन वज्रमूर्खों के मुँह में लगाम नहीं है।

' देह से व्यतिरिक्त कोई आत्मा है भोक्ता।
स्वर्ग आदिक के फलों का ' वात जो यह वोलता ॥
है उसे आशा, वडी है जो मधुर फल से सभी।
नभविटप के कुसुम से, पैदा जो होवैंगे कभी ॥ १६ ॥

अपने कपोलकल्पना से एक नई वस्तु मान लेते हैं, और उचक्के दुनिया को ठगा करते हैं।

' नहीं है जो ' उसे ' है ' कहनेवाले झूठ वकते हैं।
वने हैं आस्तिक, वे नास्तिक सच्चे को कहते हैं ॥
कटे तन से पृथक् उस जीव को, किसने कहाँ देखा ?
बना परिणाम संहति का, जिसे चित् लोग कहते हैं॥१७॥

ये आस्तिक कहलानेवाले केवल दुनिया को ही नहीं, बल्कि अपने को भी ठग लेते हैं।

एकसा मुखड़ा, भला जब अङ्ग भी हैं एक से।
एक से हैं लोग, वर्ण विभाग है किस भेद से?
जब सभी नारी हैं एकाकार, धन सब एक सा।
यह हमारा, यह पराया, हो गया किस भेद से?
धन गहन, दारा गमन, हिंसा में जो करते विचार।
वे निपौरुष लोग हैं, बातें बनाते भेद से॥ १८॥

(सोचकर श्लाघा के साथ) वाह, शास्त्र तो लोकायत ही है, जिस में एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाता है, पृथ्वी, अप्, तेज और वायु, ये चार तत्व माने जाते हैं, अर्थ और काम, दोही की पुरुषार्थ में गणना है, 'भूतों को ही चेतना होती है, परलोक कुछ नहीं है, मृत्युही मोक्ष है' ये सब बातें जिसके अन्तर्गत हैं। वाचस्पति मेरा अभिप्राय जानता था, इसी लिये उसने इस विषय पर, एक अनुबन्ध लिखकर चार्वाक के हवाले करगया, जो अब पढ़ते पढ़ाते, शिष्योपशिष्यों द्वारा बहुत प्रकार का होकर संसार में फैलगया है।

(चार्वाक का शिष्य के साथ प्रवेश)

चार्वाक—बेटा, नहीं जानता, दण्डनीति ही एक मात्र विद्या है। वार्ता शास्त्र (राजनीति) मे धूर्तों के बकवाद. के तीनो पोथे पच जाते हैं (आजाते हैं) स्वर्गोत्पादकत्व करके विशेष का अभाव होने से।

देख, कर्ता भी मरजाय क्रिया भी हो समाप्त जब।
सामग्री जल जाय स्वर्ग हो याज्ञिक को तब॥
होती जौ यह बात खूब फलते वे तरु अब।
जंगल में जो जले रहे दावानल से सब॥ १९॥
जौ मख में मारे हुए पशुगण स्वर्ग पधारते।
याज्ञिक गण निज जनक को तौ फिर क्यौं नाहिं मारते॥२०॥

देता तृप्ति विशेष, मृतलोगों को श्राद्ध जौ।
तौ प्रदीप निःशेष, तेल पाय बरता अधिक ॥ २१ ॥

शिष्य–आचार्य्य, यदि 'खावो पीयो मस्त रहो' यही परमार्थ है, तो धर्म प्रवर्तक तपस्वी सांसारिक सुखों को छोड़कर, पराक, सन्तपन, षष्ठ कालादिक व्रतों में अपनी आंतें क्यों सुखाते हैं और ऐसे घोर कष्टों में अपने प्राण को क्यों डालते हैं?

चार्वाक–अजी धूर्तों ने शास्त्र बनाकर, इनको ठग लिया है। सो ये मूर्ख मन के लड्डू खाखाकर, अपनी क्षुधा शान्त किया करते हैं, देखो तो,

दाबि भुजासे मिले भुजमूल, उठी छतियाँ अतिही छविपावती
चञ्चल वाम विलोचनि की, मिलनी यह आनँद मोद बढ़ावती।
होत कहाँ सुख लूटकी बात, कहां पँचआगिनि देह जरावती।
भीख की बात, कहाँ उपवास? कथा यह मूरखके मन भावती, २२

शिष्य–आचार्य, धर्मप्रवर्तक तो यों बकते हैं कि दुख मिले सुख छोड़ने ही योग्य है।

चार्वाक–अरे, यह उन नरपशुवों के बुद्धि का चमत्कार है।

संसर्गज सब सुख दुःखों से घिरा हुआ है।
इसीलिये तज देनेवाला मूर्ख महा है॥
सुन्दर चावल स्वच्छ तजै, भूँसी के मारे।
ऐसा मूरख कौन? धान जो दूर पवारै ॥ २३ ॥

'महामोह'–अरे बहुत दिनों के बाद ये प्रमाणयुक्त वचन सुनाई पड़ रहे हैं, मानो अमृत की वर्षा हो रही है। (देखकर–आनन्द के साथ) ओ होः, कौन है? हमारे प्यारे मित्र चार्वाक।

चार्वाक (देखकर) कौन है महाराज महामोह (आगे बढ़कर) महाराज की जय होय, चार्वाक प्रणाम करता है।

महामोह–आइये आइये, यहाँ बैठिये।

चार्वाक–(बैठकर) कलियुग ने साष्टाङ्ग प्रणाम कहा है।

महामोह–कहो, कलियुग का सब आनन्द से चलाजाता है न।

चार्वाक-महाराज के प्रसाद से सब आनन्द है। और वह सब कार्य्य समाप्त करके तब प्रभु के चरणों का दर्शन करेगा।

शत्रुओं के मारने की अनुज्ञा सिर पर धरा।
कार्य्य जब पूरा किया, आनन्द तब हिय में भरा॥
दर्शनों की अनुज्ञा पाकर और भी मन बढ़ा।
धन्य वे, जो शीश निज, प्रभु चरण पर देते झुका॥२४॥

महामोह-अच्छा तो फिर कलियुग में हो क्या क्या रहा है?

चार्वाक-महाराज,

छोड छाड़ कर वेद मार्ग को, मन भावित पथ चरते हैं।
बडे २ भी लोग, मौज से जो चाहैं सो करते हैं॥
मेरे या कलि के अनुसाई में, है कोई सार नहीं।
इन चरणों के ही पौरुष प्रभाव का, वारा पार नहीं॥२५॥

सो उत्तर वाले और पछाइयों ने तो तीनों वेदों को त्यागही दिया, फिर शमादिक का कहना ही क्या है, और दूसरे जगहों में भी खाने कमाने के लिये ही वेदत्रयी बँच रही है, और आचार्य्य ने भी ऐसा ही कहा है,

अग्निहोत्र वेदत्रयी, भस्म लेप त्रय दण्ड।
मूर्ख निठल्लों के उदर, पोषण का पाखण्ड॥ २६॥

सो कुरुक्षेत्रादिक में तो महाराज स्वप्न में विद्या या प्रबोध के उदय की शङ्का न करें।

महामोह-खूब ही हुआ यह बड़ा भारी तीर्थ मारा पड़ा।

चार्वाक-महाराज, कुछ और भी कहना है।

महामोह-वह क्या?

चार्वाक-विष्णुभक्ति नाम की एक महाप्रभावा योगिनी है, यद्यपि कलि ने उसके प्रचार को भी तीन तेरह कर दिया है, तथापि जिसके ऊपर वह अनुग्रह कर देती है, उसके ओर तो हम लोग आँख उठा कर देखने में भी समर्थ नहीं होते। उससे महाराज सावधान रहें।

महामोह-(डर से-स्वगत) आः उस योगिनी का महाप्रभाव

कौन नहीं जानता, वह तो हम लोगों की जन्म से वैरिन है, और वह टलने वाली भी नहीं है। अच्छा (स्वगत) मामला तो वेढ़व है (प्रकट) अजी यह शङ्का छोड़ दो, काम क्रोध के डट जाने पर उसकी बनाई एक न बनेगी।

चार्वाक-तथापि जीत चाहने वालों को छोटे से शत्रु की भी उपेक्षा न करनी चाहिये—

तुच्छ शत्रु भी अन्त में, नृप दुखदाई होय।
छोटे काँटे के गड़े, दुख पावै सब कोय ॥ २७ ॥

महामोह-यहाँ कोई है ?

(दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक-महाराज की जय होय, मेरे लिये क्या आज्ञा है ?

महामोह-सुनो जी कुसंग ! काम क्रोध लोभ मद मात्सर्य्यादिक को आज्ञा दो, कि योगिनी विष्णुभक्ति को बड़े सावधानी से मारें।

दौवारिक-जो हुकुम।

(बाहर जाता है)

(पत्र हाथ में लिये एक पुरुष का प्रवेश)

पुरुष-लो, उत्कल देश से चला चला यहाँ पहुंचा। वहां समुद्र के किनारे जगन्नाथ जी का मन्दिर है। वहीं से मद राजा और मान राजा ने चिट्ठी देकर महाराज के पास भेजा है। (देखकर) और यही तो वाराणसी पुरी है, और राज-कुल भी यही है, चलो भीतर चलें (घुसता है) अरे, महाराज तो चार्वाक के साथ कुछ सलाह कर रहे हैं, अच्छा पास तो चलें (पास जाकर) महाराज की जय होय, यह पत्र महाराजही के लिये है, मुलाहिज़ा कियाजाय (चीठी देता है)

महामोह-(चीठी लेकर) आप कहाँ से आ रहे हैं ?

पुरुष-मैं तो जगन्नाथ जी से आता हूँ।

महामोह-(स्वगत) कोई मारके का काम होगा (प्रकट) चार्वाक, जाओ, और जो कुछ करना हो उसे सावधानी से करना।

चार्वाक-जैसी महाराज की आज्ञा।

(बाहर जाता है)

महामोह-(चीठी पढ़ता है)

'स्वस्ति श्री वाराणसी में महाराजाधिराज परमेश्वर महामोह के चरणकमलों में मद मान के साष्टाङ्ग प्रणाम के पश्चात् ज्ञात हो कि यहाँ सब कुशल है। हाल यह है कि शान्ति देवी अपनी माँ श्रद्धा के साथ विवेक की दूती बन कर आई हैं। और विवेक से मिलने के लिये उपनिषत् देवी को दिन रात प्रबोधा करती हैं। और काम का संगी धर्म भी, मालूम होता है, कि विवेक की ओर फूट कर मिल-गया है, क्योंकि उस (काम) से छूँटकर न जाने कहाँ ग़ायब रहता है। अब जैसा महाराज उचित समझें करें, मैंने समाचार दे दिया। शुभम्,

महामोह-(क्रोध से) अरे क्या ये गदाई शान्ति से भी डरते हैं, कामादिक प्रतिपक्षियों के सामने तो उसका पता भी न लगेगा। क्योंकि:—

ब्रह्मा विश्व बनावते मन दियें, गौरी लिये शङ्कर।
बैठे हैं, सुख से चढ़े नयन हैं, यज्ञान्तकृत् ईश्वर।
सोते हैं पयसिन्धु में, हरि किये श्री को हिये भूषण।
जीवों में फिर शान्ति का कथन क्या ? जो हैं भरे दूषण॥

(पुरुष से कहता है)

जाल्म, तू जा, और काम के पास जाकर तुरन्त समाचार दे, कि दुरात्मा धर्म का थाह हमलोगों को लग गया, सो उसका क्षण भर के लिये विश्वास न करें, और अच्छी तरह से बाँध कर रखें।

पुरुष-जो महाराज की आज्ञा। (जाता है)

महामोह-(स्वगत चिन्ता करता है) इस शान्ति का भी कोई उपाय है ? या अन्य उपाय क्यों करना, सीधे क्रोध लोभ को भेजदें ये दोनों काफी हैं (प्रकट) कोई है ?

(दौवारिक आता है)

दौवारिक-महाराज, क्या आज्ञा है ?

महामोह-क्रोध और लोभ को बुलावो।

पुरुष-बहुत अच्छा महाराज।

(जाता है और क्रोध लोभ को साथ लेकर लौटता है)

क्रोध-मैंने सुना है कि शान्ति श्रद्धा और विष्णुभक्ति ने महाराज से बग़ावत की है, अरे इन्हें यह भी ध्यान नहीं है कि मैं जीता जागता बैठा हूँ। इन सबों को अपना जीवन भार क्यों होगया है?

यथा-सब जगको अन्धा करूं, बहिरा भी करि देंउ।
धीर सचेतन पुरुष को, चञ्चल जड़ कर देंउ॥
सुनै न हित की एक भी, लखै न अपना कर्म।
पढ़ा गुना धीमानभी, भूलै विद्यामर्म ॥ २९ ॥

लोभ-अरे, मेरे मारे तो उन्हे मनोरथ के इस नदी में से उस नदी में, बहते बहते ठिकाना ही न लगेगा, शान्त्यादिक की चिन्ता कौन करेगा? यार इधर देखो।

मेरे मतङ्ग ये झूमत हैं जिनके मद अम्बु चुवै निशि वासर।
वात से बीस चलैं अति चंचल हैं ये तुरंग बडे गति आगर।
एतो लह्यौं औ लहौंगो इतेक,कितेक न सोच बढ्यो जिमि सागर
शान्ति कहां इन लोगन को? जिनके चित सोचन ते नित झाँझर॥३०॥

क्रोध-सखे तुम तो हमारा प्रभाव जानते ही हो-
इन्द्रदेव ने वृत्तासुर को मार गिराया।
चन्द्रचूडेन ब्रह्मदेव का शीश उड़ाया॥
ऋषि वशिष्ट को रहे पुत्र सौ, उनको मारा।
कौशिक मुनि ने. और ब्रह्मबध नहीं विचारा॥

और भी-यौं कीरति विद्या सदाचार युक्त कुल भी रहे।
पौरुष में प्रख्यात हो, तौभी धोडालूँ उसे॥ ३१ ॥

लोभ-तृष्णे, इधर तो आना। (तृष्णा का प्रवेश)

तृष्णा-आर्य्यपुत्र की क्या आज्ञा है?

लोभ-प्रिये, सुनो—
खेत, गांव, वन, पर्वत, पत्तन, पुरी, द्वीप, महिमण्डल में
जो जँकड़े हैं, प्रतिलाभों के भारी आशाशृंखल में॥

होकरके उसपर प्रसन्न, यदि अपना अङ्ग बढ़ावै तू।
हो न शान्ति लाखों दुनिया से, ऐसा रङ्ग जमावै तू ॥३२॥

तृष्णा–आर्य्यपुत्र, इस काम में तो मैं स्वयम् लगी रहती हूँ, तिसपर आर्य्यपुत्र की आज्ञा भी हो रही है अब तो कोटानिकोटि ब्रह्माण्डों का, मेरे पेट में पता भी न चलेगा।

क्रोध–हिंसे, यहाँ आवो। (हिंसा आती है)

हिंसा–लो, मैं आपहुँची, क्या आज्ञा है ?

क्रोध–तुम्हारे ऐसा धर्मपत्नी पाकर, मातृवध, और पितृवध भी मेरे बाएं हाथ का काम है, यथा।

माता है या पिशाची, जनक शमन है, कीट हैं नीच भाई।
फाँसी के योग गोती, परम कुटिल हैं स्वारथी जाति भाई॥
(हाथमींजकर)
नाशूंगा मैं न इनके जबतक कुल को, गर्भ को भी गिराऊँ।
क्रोध ज्वाला जलाती तन मन तवलौं, हाय कैसे बुझाऊँ॥

(देखकर) मालिक यहीं हैं, तो हमलोग चलें। (सब जाकर) महाराज की जय होय।

महामोह–श्रद्धा की बेटी शान्ति हमलोगों की वैरिन है, उसे आपलोगों को सावधान होकर गिरफ्तार करना चाहिये।

सब–बहुत अच्छा महाराज (सब जाते हैं)

महामोह–यह श्रद्धा की बेटी है, सो इसके हटाने का एक और उपाय भी चित्त पर चढ़ रहा है। वह यह कि शान्ति की माता श्रद्धा है, और वह श्रद्धा परतन्त्र है। सो किसी न किसी उपाय से, उपनिषत् के पास से श्रद्धा को उड़ा लेना चाहिये। फिर एक तो शान्ति आपही मृदुलस्वभावा है, तिसपर जहाँ माता का वियोग उसे हुआ, कि वह हटी। सो इस काम में छैल छबीली मिथ्या दृष्टि बड़ी होशियार है, उसी को इस काम में नियुक्त करना चाहिये (दहिने बाएँ देखकर) अरी, विभ्रमवती, छैल छबीली मिथ्या-दृष्टि को तो जल्द बुलाला।

विभ्रमवती–जो आज्ञा महाराज की।

(जाकर मिथ्यादृष्टि के साथ लौटती है)

मिथ्यादृष्टि–सखि, महाराज को देखे बहुत दिन हुए, सो अब मैं उनके सामने कैसे जाऊँ ? महाराज कहीं ख़फ़ा तो न होने लगेंगे।

विभ्रामवती–सखि, महाराज ने जहाँ तुम्हारा मुख देखा, कि अपने को भूले, कहाँ का ख़फ़ा होना ?

मिथ्यादृष्टि–सखि, मेरे सोहाग अकारथ हैं, इससे मेरी हँसी तो नहीं करती हो ?

विभ्रामवती–सखि, सोहाग के अकारथ होने की परीक्षा, तो अभी मिलजावेगी,और यह तो बतलाओ तुम्हारी आखें उनीदी क्यों है ? मुझे तुम्हारी आखें नींद से भरी मालूम पड़ती हैं।

मिथ्यादृष्टि–सखि जो स्त्री एक की प्यारी होती है, उसे सोना मुहाल होजाता है, और हमलोग तो लोकमात्र की प्यारी ठहरीं, हमलोगों को नींद कहां ?

विभ्रामवती–प्रिय सखी के वालम (वल्लम) कौन कौन हैं ?

मिथ्यादृष्टि–पहिले तो महाराज ही ठहरे, फिर काम, क्रोध, लोभ अहंकार आदिक। सौ की सीधी एक बात समझ लो कि इस कुल में जो उत्पन्न हुआ, क्या लड़का, क्या बूढ़ा, क्या जवान, विना मुझे हृदय से लगाये किसी को न रात चैन न दिन।

विभ्रामवती–काम की स्त्री रति, क्रोध की हिंसा, लोभ की तृष्णा सुनी जाती हैं,और उनके प्रियतमों से तुम सदा रमण करती हो, फिर उन स्त्रियों को तुम से ईर्ष्या क्यों नहीं होती ?

मिथ्यादृष्टि–ईर्ष्या दूर रहे, वे विचारी तो मेरे विना एक मुहूर्त भी सुख नहीं मानतीँ।

विभ्रामवती–सखि, इसीलिये कहती हूँ कि तुम्हारे ऐसी सोहागिनी दुनिया मे दूसरी नहीं है, कि जिसके सुहागवल से दबकर, सौतिन लोग भी कृपाही चाहती है। सखि, एक बात और कहती हूं। मेरा अनुमान है कि तुम्हारे इस उनीदी मतवाली चाल में खिसके हुए नूपुरों के झनकार से, महाराज को तोष और क्षोभ

दोनो होगा।

मिथ्यादृष्टि-इसमें डरने की क्या बात है। महाराज ने स्वयम् इसीलिये हमलोगों को नियुक्त किया है, सो इसमें हमलोगों की ढिठाई कुछ भी नहीं है। फिर सब से बढ़कर बात तो यह है, कि पुरुष तो स्त्रियों के दर्शन मात्र से प्रसन्न होजाते हैं, इन विचारों से भय कहाँ ?

महामोह-(देखकर) लो, प्रिया मिथ्यादृष्टि तो आगई, यह तो-

अलसाती है आती नितम्बके भारन हाथ उठाय के माल सँवारती।
यौं कुचपीन नखाङ्कित देखिपड़ैं, कलकङ्कणको झनकारती॥
लोचन पङ्कज से विकसे, हियसे जियको जनु खैंचनिकारती।
घायल लोग खड़े घुमरैं यह दृष्टि उठाय जहाँ पै निहारती॥३४॥

विभ्रामवती-महाराज यही हैं, प्रिय सखी आगे बढ़ो।

मिथ्यादृष्टि-(आगे बढ़कर) महाराज की जय होय।

महामोह-प्रिये,

गोद में आकर हमारे, अङ्क में भरलो हमे।
शोभा कुचों की भी बढ़े, नख रेख से पीनस्तने॥
अङ्क में मेरे, तुम्हारी मूरती थापित रहे।
गोद में कैलाश पति के, ज्यों उमा शोभित रहे॥ ३५॥

(मुसकुराती हुई मिथ्यादृष्टि वैसाही करती है)

महामोह-(आलिङ्गन का सुख नाट्य करता है) ओ हो, प्रिया के अङ्क भरने से तो जवानी फिरसे लौट आई, यथा-

नूतन वैस विलास में जो, पहिले उतपन्न हुआ करता है।
चित्त को मादक वस्तु अभूत, प्रभूत विषय रस से भरता है॥
वृत्तिकरै सब अन्तर्धान, छुए तुम्हरे हिय में धरता है।
काम विकार अपार सोई, नव नेहको उद्भव जो करता है॥३६॥

मिथ्यादृष्टि-महाराज, मेरी भी वही दशा है। मन मिलने का प्रेम समय बीतने पर भी नहीं हटता।

महाराज,-क्या आज्ञा है, प्रभु ने मुझे किसलिये स्मरण किया है ?

महामोह-प्रिये,

हिय से बाहर जो रहे स्मरण कीजिये ताहि।
तेरी मूरति तो खिंची मम हिय भीती मांहि ॥ ३७ ॥

मिथ्यादृष्टि-बड़ी कृपा।

महामोह-जिसभाँति अपनी अदा दिखाती हुई सर्वत्र घूमती हो, उसी भाँति घूमाकरो, और एक बात यह है कि वह गुलाम की बच्ची श्रद्धा, आजकल विवेक से उपनिषत् का संयोग कराने के लिये कुटनी बन बैठी है, इसलिये—

पापचेरि अति पापिनी, वैरिन गत कुल टेक।
तेहि रण्डा को कचपकरि, पाखण्डिन्ह मँह फेंक ॥ ३८ ॥

मिथ्यादृष्टि-इतनी सी बात के लिये स्वामी को चिन्ता क्यों है?केवल ज़बान हिला देने से आपकी दासी श्रद्धा सब कुछ करेगी। मैंने जहां 'धर्म झूठा, मोक्ष झूठा, वेदमार्ग झूठा, सुख में विघ्न डालने वाले झूठे, शास्त्र के गपोड़े झूठे, स्वर्गफल झूठा' कहना आरम्भ किया कि तहाँ स्वयम् वेदमार्ग को ले बढ़ूंगी,उपनिषत् विचारी की गिनती ही क्या है, तिस्पर विषयानन्द से विमुख मोक्ष में,उपनिषत् भी दोष दिखलाती है। श्रद्धा को थोड़े ही समयमे मैं कहीं जमने न दूगी।

महामोह-यदि ऐसा हुआ तब तो तुमने मेरा बड़ाहीप्रिय किया।
(फिर आलिङ्गन करके चुम्बन करता है)

मिथ्यादृष्टि-महाराज के ऐसा चाहने पर मुझे लज्जा नहीं है॥

महामोह-ऐसाही हो, अब हमलोग महल में,चलें। (सब जाते हैं)

तीसरा अङ्क

(शान्ति और करुणा का प्रवेश)

शान्ति-(आँखों में आँसू भरकर) माँ, माँ, तू कहाँ है? अपना प्यारा मुखड़ा मुझे दिखा। हा!

वेडर हरिनों का कानन। झरते झरने ऐसा वन॥
मन्दिर पवित्र सुखदाई। सज्जन मनमे रहि आई॥
सो पड़ी म्लेच्छ के घर में। कपिला गइया सी भरमे॥
वह देवि रहेगी मरके। पाखण्ड हाथ में पड़के॥ १॥

अब उसके जीते रहने की आशा करनी ही व्यर्थ है। क्योंकि।

मो विनु खाय न पीवै, नाहिं नहाय।

मोहि विनु प्राण न राखिहि, श्रद्धा माय ॥ २ ॥

मां श्रद्धा के विना शान्ति का एक क्षण भी जीना दुर्दशा है। सखि करुणे, तू मेरे लिये चिता रचदे, जिससे अग्नि में प्रवेश करके तुरन्त उसके पास पहुंच जाऊँ।

करुणा-(आँसू भरके) सखि, तेरे मुखसे ऐसी कर्णकटु बातें सुनकर, मेरे तो प्राण निकले जा रहे हैं। सो प्रिय सखि, कृपा करके एक मुहूर्त और प्राणों को धारण कर, तब तक मैं जहाँ तहाँ तीर्थों में, और गंगातीर के रहने वाले मुनियों में भली भाँति ढूँढ लूँ। ऐसा न हो, कि कहीं पर वह महामोह के डर से छिपी बैठी हो।

शान्ति-सखि, क्या ढूँढोगी? मैं तो सब ढूंढ चुकी—

सरितट लमेर जँह जमते। साधू सन्यासी रहते ॥

गृहमेधिन के गृह रूरे। समिधा चषाल से पूरे ॥

चारो आश्रमियों के थल। ढूढा है मैंने अविकल।

माँ श्रद्धा की बातें भी। सुन पड़ती नहीं कहीं भी ॥ ३ ॥

करुणा-सखि मैं इसलिये कहती हूं कि यदि वह वही सात्विकी श्रद्धा है, तो उसकी ऐसी दुर्दशा होना सम्भव नहीं है। क्योंकि ऐसे पुण्यात्माओं को ऐसा भारी दुःख नहीं आता।

शा०-ब्रह्मा के वाएँ होने से क्या नहीं होता--

वाम विधि की टेढी करणी।

हरी जाय लङ्केश रजनिचर ने रघुवरघरनी।

तीनो वेद रसातल में पहुँचायो, असुर धनी।

लै भागा पाताल केतु, गन्धर्व लोक रमणी ॥ ४ ॥

सो इसे ब्रम्हा का ही करतब समझना चाहिये। अच्छा तो पाखण्ड के ही घरों मे हमलोग ढूढें।

करुणा-ठीक है, चल (दोनो घूमती हैं)

(सामने देखकर)

करुणा–सखी, राकस है राकस

शान्ति–राक्षस कहाँ है ?

करुणा–सखी, देख देख, यही देह मे मैला लपेटे, घिनावनी सूरत, भयावनी सूरत, बालों को नोचे खसोटे, नंगा धिडंगा, बेढंगा, मोरछल सा भाड़ू हाथ में लिये, इधरही बढ़ा चला आता है।

शान्ति–सखी, यह राक्षस नहीं है, यह तो पराक्रमरहित मालूम पड़ता है।

करुणा–सखी, फिर यह और क्या हो सकता है ?

शान्ति–सखी, हो न हो, यह पिशाच है।

करुणा–सखी, इस समय भगवान् भास्कर देव के किरणमालाओं से, लोक लोकान्तर व्याप्त हो रहे हैं, इस समय पिशाच के लिये अवकाश कहां है ?

शान्ति–तो यह नरककुण्ड से ताज़ा निकला हुआ कोई पापी होगा। (पास से देखकर और विचार करके) अरे जाना, यह तो महामोह का भेजा हुआ दिगम्बर सिद्धान्त है। सो यह आँख के ओट रहे तभी कल्याण है। (मुंह फेरती है)।

करुणा–सखी, एक मुहूर्त ठहरजा, तो यहाँ श्रद्धा का पता लगावैं

(दोनों ठहर जाती हैं)

(ऊपर कह हुए रूप से दिगम्बर सिद्धान्त का प्रवेश)

दिगम्बर–नमो अरहन्त, नमो अर्हन्त। नवद्वारे का पींजड़ा उसमें आतम दीप॥ जिनवर की वाणी भली देती मोक्ष समीप। (घूमता है) (आकश की ओर) अरे सुनोरे सरावगियो सुनो।

मलमय पुद्गल पिण्ड मे, जल से कैसी शुद्धि।
आतम विमल सुभाव है, ऋषिसेवा से विद्धि॥

क्या कहा कि ऋषि परिचर्य्या कैसे होती है ? सुनो–

चरण प्रणाम दूर से करै। मीठा भोजन आगे धरै॥
भाव भगत से हटै न कोय। ईर्ष्या मल हिरदै से खोय॥
नारी भोगैं जो ऋषि लोग। धन्य धन्य ऐसा संयोग॥६॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) श्रद्धे ! इधर तो आना (दोनो डरसे-

देखती हैं)

(तदनुरूप वेषधारिणी श्रद्धा का प्रवेश)

श्रद्धा–जो महाराज की आज्ञा।(शान्ति मूर्छा खाकर गिरती है)

दिगम्बरसिद्धान्त। अरे, सरावगियों के कुलको एकक्षण के लिये नहीं छोड़ना।

श्रद्धा–जो महाराज की आज्ञा (जाती है)

करुणा–सखी धैर्य्य धर, धैर्य्य धर, प्रिय सखी तू नाम के लिये भी न डर, क्यों कि मुझ से अहिंसा ने कहा था, कि पाखण्डों में भी तमस् की बेटी एक श्रद्धा नामकी है। सो यह तामसी-श्रद्धा होगी

शान्ति–(धैर्य्य धरके) सखि, बात तो ऐसी ही है, क्यों कि

सदाचाररत सुन्दरी गुणगर्भा जो होय।
दुराचाररत भीषणा होय सकत नाहिं सोय॥ ७॥

अच्छा, तो हमलोग बुद्ध के घर में भी उसे खोजें। (शान्ति और करुणा दोनो घूमती हैं)

(हाथ में पोथी लिये भिक्षुक बुद्धागम आता है)

भिक्खु–सुनो रे भाई उपासको सुनो—

जिसधीसन्तति में आरोपित हो बाहर दिखराते।
भाव सकल जो स्वयम असत् हैं क्षण मे क्षय हो जाते॥
सकल वासना क्षीण होय तब तो धीसन्तति सोई॥
हो करके निर्लेप विषय से स्वयम् प्रकाशित होई॥ ८॥

(फिर बड़े चाव से)

अरे, यह बुद्ध धर्म बड़ा अच्छा है, इसमें सुख और मोक्ष दोनों सुलभ है, अहा।

रहने को मिला घर सुन्दर सा, बनिया नी मिलीं अति ही रुचिकारी।
अगरासन मिष्ट मिलै रुचि होजब, सेज मुलायम आनँदकारी॥
मुख जोहति हैं युवती अति प्रेम से, अङ्ग सुगन्धि मलैं सुखकारी।
इमि काम कलोल में जात चली, सजनी संग मे रजनी उजियारी॥

करुणा–सखि, यह खासा ताड़ के वृक्ष सा लाँबा, गेरू से लाल बड़े

बड़े वालों को लटकाये, खोपड़ी घोटमघोट कराये कौन इधर को चला आता है।

शान्ति—सखि, यही बुद्धागम है ?

भिक्खु—(आकाश की ओर) अरे उपासको, अरे भिक्खुओ, भगवान् बुद्ध के वाक्यामृत सुनते जाओ। (पोथी बाँचता है) मैं दिव्य दृष्टि से लोगों की सुगति और दुर्गति देखता हूँ। जितने संस्कार हैं सब क्षणिक हैं, आत्मास्थायी नहीं है, सो भिक्षु यदि स्त्रियों को भोगें, तो डाह नहीं करना। जिसको डाह कहते हैं, सोतो चित्त का मल है। (नेपथ्य की ओर देखकर) श्रद्धे इधर तो आना।

(भिक्षुकी के वेष मे श्रद्धा का प्रवेश)

श्रद्धा—आज्ञा महाराज।

भिक्खु—उपासकों और भिक्खुओं के गले सदा लगी रहो।

श्रद्धा—जो महाराज की आज्ञा (जाती है)

शान्ति—सखि, यह भी तामसी श्रद्धा होगी।

करुणा—ठीक है

क्षपणक—(भिक्खु को देख कर उच्चस्वर से) अरे, अरे, भिक्खु! इधर तो आना। मैं तुझ से कुछ पूछूंगा

भिक्खु—(क्रोध से) हट पाप की सूरत, पिशाच की मूरत, क्या बकता है।

क्षपणक—अरे, क्रोध क्यों करता है, मैं शास्त्र की बात पूछूंगा।

भिक्खु—ओहो शास्त्र की बात भी आप जानते हैं। अच्छा मैं ठहरा हूं (पास जाकर) पूछ क्या पूछता है ?

क्षपणक—बतला, तूतो क्षण विनाशी है, फिर यह व्रत तूने किसके लिये धारण किया है ?

भिक्खु—अरे सुन, हमारे, विज्ञान धारा में पड़े हुए, जिस चेतना लक्षण वाले को विज्ञान होगा उसकी मुक्ति होगी।

क्षपणक—अरे मूर्ख, किसी मन्वन्तर में कोई मुक्त होगा, तो रे नष्ट तूतो इसक्षण वर्तमान है, तुझे इससे क्या लाभ होगा ? तुझसे एक बात और पूछना है, कि इसधर्म का उपदेश तुझे किसने किया ?

भिक्खु—इस धर्म को भगवान् बुद्ध ने उपदेश किया है, और वे

सर्वज्ञ थे ।

क्षपणक–अरे, बुद्ध सर्वज्ञ थे, यह तैने कैसे जाना ?

भिक्खु–अरे, स्वयं उनके शास्त्र में लिखा है कि वे सर्वज्ञ थे ।

क्षपणक–अरे हतबुद्धि ! यदि अपने ही कहने से वे आप सर्वज्ञ हो-गये तो मैं भी सबकुछ जानता हूँ तू और तेरे बाप दादे, तेरे सात पुरखा मेरे दास थे ।

भिक्खु–(क्रोध से) अरे पापी पिशाच मलिच्छ,क्यों रे,मैं तेरा दास हूं ?

क्षपणक–अरे विहार के दासियों को नष्ट करनेवाला, पापी परिव्राजक, मैंने तो केवल दृष्टान्त दिया है । अरे, इस बुद्धमत को छोड़ और जैनियों का धर्म ग्रहण कर ।

भिक्खु–अरे पापी, आप तो तू नष्ट हुई है दूसरों को भी नष्ट करना चाहता है ।

क्यौं मर्य्यादायुत पुरुष, छोड़ै श्रेष्ठ सुराज ।
बनै तोहि समजाय के, भारी नीच पिशाच ॥ १० ॥

फिर जैनधर्म के ही सर्वज्ञता को कौन स्वीकार करता है ?

क्षपणक–ग्रह नक्षत्रों की चाल, सूर्य्य चन्द्र का ग्रहण, लुप्तलाभ, परमार्थ ज्ञान के संवाद देखने ही से भगवान् अर्हत् की सर्वज्ञता प्रकट है ।

भिक्खु–अरे ज्योतिष तो अनादि काल से ही चला आता है, और परमार्थ ज्ञान इन्द्रियातीत है, सो इन दोनों बातों के धोखे में आकर तूने बड़ा कष्टकर व्रत धारण किया है । देख–

देह के अनुसार ही विस्तार है जब जीव का ।
ज्ञान हो सकता उसे कैसे कहो जग तीन का ॥
सम्बन्ध जब कुछ है नहीं, फिर दीप कैसे कर सका ।
घर उँजेला; आपही घट से कि जब वह था ढका ॥ ११ ॥

सो इस दोनो लोक के गये गुजरे मत से बौद्ध मत बहुत अच्छा है, क्यौंकि मेरे दृष्टि से तो बौद्धधर्म बड़ा सुखद और रमणीय है ।

शान्ति–सखि, चलो दूसरी ओर चलें ।

करुणा–चल सखी (दोनो घूमती हैं)

शान्ति–(सामने देखकर) यह तो सोमसिद्धान्त है, चल इसके

पीछे चलैं।

सोमसिद्धान्त–(घूमकर)

नरकपाल को पात्र बनाया मरघट में आवास लिया।
पहिना गले हार हाड़ों का ईशवेष स्वीकार किया॥
योगाञ्जन से शुद्ध हुई हैं आँख देखता हूँ अब मैं।
आपस में ये जगत् भिन्न हैं, भेदरहित ईश्वर से हैं॥१२॥

क्षपणक–यह कौन पुरुष कापालिक व्रत धारण किये हुये है ? सो इससे भी कुछ पूछूँ (पास जाकर) अरे ओ खोपड़ीवाले ! बतला तो तेरा धर्म और मोक्ष कैसा है ?

कापालिक–अरे क्षपणक, हमलोगों का धर्म क्या है ? सुन ले।

मेद आंत चरबी, मनुष्य का मांस मनोहर।
ले करके देते हैं पावक में आहुति वर॥
ब्राह्मण की खोपड़ी वही है मेरा चुक्कड़।
भरके दुधुआ पारण करते हैं नित अक्खड़॥
विप्र मुण्ड ताजा कटा, लोहू की धारा गरम।
देव महाभैरव निकट, देते हैं बलि नित्य हम॥ १३॥

भिक्खु–(कान मूँदता है) बुद्ध बुद्ध ! अरे बड़ा दारुण धर्म है।

क्षपणक–अर्हन्त, अर्हन्त, अरे किसी घोर पापी ने इस विचारे को ठग लिया है।

कापालिक–(क्रोध से) क्यों रे पाषण्डियों में नीच मुड़िया ! क्यों रे खौरहे ! चौदहो भुवनों के उत्पत्ति, स्थिति, लय कर्ता, भगवान् भवानीपति को जिसकी महिमा वेदान्त वर्णन करता है, तू नीच ठग बतलाता है ? अच्छा तो तुझे इस धर्म की महिमा बतलाता हूँ।

विधि हरि हर आदिक देवों को, मैं धर लाऊँ।
विचरैं सदा अकाश, नखत का मारग ताऊँ॥
नगर पहाड़ों सहित भूमि, पानी से भर दूँ।
देख एक क्षण बीच, सोख मैं उसको भी लूँ॥ १४॥

क्षपणक-अरे खोपड़ी वाले ! इसी लिये कहता हूं कि किसी ऐन्द्र-जालिक ने तुझे माया दिखला कर ठग लिया है।

कापालिक-अरे, पापी ! फिर भी परमेश्वर पर ऐन्द्रजालिक होने का आक्षेप करता है, अब इसका पाजीपन सहन नहीं किया जा सकता (तलवार खैंचकर) बस, अब—

काटूं इसका कण्ठ, चण्ड तलवार धार से।
रक्त धार बहि चले, फेनयुत कण्ठ नाल से॥
डमरू घोर रव डानू डानू, करि भूत बुलावै।
अपने गण के सहित, तृप्त काली हो जावै॥ १९॥

क्षपणक-महाभाग, अहिंसा परम धर्म है।

भिक्खु-(कापालिक को रोकता है) हाय ! हाय ! महा भाग ! हँसी के कहा सुनी में इस विचारे पर चोट करना उचित नहीं है।

कापालिक-(तलवार मियान में करता है)

क्षपणक-(ढाढ़स करके) यदि महाभाग के क्रोध का वेग कुछ शान्त हुआ हो, तो मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

कापालिक-पूछ।

क्षपणक-आप का परम धर्म तो मैंने सुना, परन्तु यह रह गया कि मोक्ष का सुख कैसा होता है ?

कापालिक-सुन,

देखा है न कहीं बिना विषय के आनन्द होवै जुदा।
मुक्ती पत्थर है भला यह गती क्यौं तू लिया चाहता॥
देवी सी रमणी गले लपटती है शम्भु तू भी बना।
ऐसी अद्भुत मौजही मुकुति है भूतेश ने यौं कहा॥ १६॥

भिक्खु-महाभाग, जिसको वैराग्य नहीं है, उसकी मुक्ति कैसी ?

क्षपणक-अरे खोपड़ीवाले क्रोध न कर तो कहूं, शरीरी सरागी मुक्त कैसे कहा जा सकता है ?

कापालिक-(स्वगत) अरे इनके मन में कुछ भी श्रद्धा नहीं है।

अच्छा देखो। (प्रकट) श्रद्धे यहां तो आना
(कापालिनी रूप धारिणी श्रद्धा का प्रवेश)

करुणा-सखि देख यह श्रद्धा रजस की बेटी है-कैसी बनी है-

फूले हुए नील कमलों से चञ्चल लोचन।
नर के हाडों से निर्मित ये उज्ज्वल भूषण॥
पीन नितम्ब कुचों के भारों से गति मन्थर।
पूर्ण चन्द का सा शोभित है मुख अति सुन्दर॥ १७॥

श्रद्धा-(घूमकर) मैं आई, स्वामी क्या आज्ञा है?

कापालिक-पकड़ तो इस दुष्ट अभिमानी भिक्खु को। (श्रद्धा भिक्खु से लिपट जाती है)

भिक्षु-(आनन्द से लिपट जाता है और रोमाञ्चित होना नाद्य करता है) अरे कापालिनी के स्वर्श में तो बड़ा सुख है।

वाह! —

राड़ों के कुचपीन वार कितने मैंने बडे चाव से।
दाबाथा, उनको लगा हृदय में, रक्खा घने भाव से॥
लेता हूं शत बुद्ध की शपथ मैं, जैसा कि कापालिनी।
देती है सुख अङ्क में लपट के, वैसा न पाया कहीं॥ १८॥

अरे खोपड़ी वाले का चरित्र बड़ा पवित्र है, सोम सिद्धान्त बहुत अच्छा है। यह धर्म बड़ा ही विचित्र है। हे महाभाग मैंने बुद्ध धर्म छोड़ा, और परमेश्वर सिद्धान्त स्वीकार किया। सो तुम आचार्य्य ठहरे, मैं शिष्य हूं। मुझे पारमेश्वरी दीक्षा दीजिये।

क्षपणक-अरे भिक्खु, अभी तूने कापालिनी छू ली, सो दूर हट।

भिक्खु-अरे पापी! तू कापालिनी का सुख क्या जानै।

कापालिक-प्रिये, इस क्षपणक को तो पकड़ (कापालिनी क्षपणक से लिपटती है)।

क्षपणक-(रोमाञ्चित हो कर) आहा, अरहन्त! कापालिनी के स्पर्श में क्या सुख है? सुन्दरी! फिर से गले लगा ले। अरे भारी इन्द्रिय विकार हो उठा। है कोई उपाय? क्या करें? इस मोरछल से ढक लूँ।

अरी,

पीन घनस्तन शोभने, मृग नयनी वर वाम।

है कपालिनी तू रमैं, श्रावक हुई निकाम॥ १९॥

ओहोः कापालिक दर्शन ही मोक्षसुख का साधन है। अजी कापालिक! मैं तो तेरा दास होगया। मुझे भी महाभैरवी दीक्षा दे।

कापालिक–बैठजाओ (दोनो बैठते हैं) (कापालिक प्याला लेकर ध्यान नाट्य करता है।

श्रद्धा–भगवन्! प्याला सुरासे भर उठा।

कापालिक–(थोड़ा सा पीकर शेष भिक्खु और क्षपणक को देता है।

यह पवित्र, पीयूष यह, यह काटै पशुपाश।

पीयो भवभेषज सुखद, भैरव कियो प्रकाश॥ २०॥

(दोनों आगा पीछा करते हैं)

क्षपणक–हमारे अर्हत के अनुशासन मे तो सुरापान कहीं नही है।

भिक्खु–कापालिक की जूठी सुरा कैसे पीवैं?

कापालिक–(विचार करके) क्या सोचते हो? श्रद्धे! इन सबों को पशुत्व अभी लगा है। सो मेरे जूठे हो जाने से सुरा को येअपवित्र मानते हैं। सो आप अपने मुखकमल के रससे पवित्र करके, इनको दें। क्योंकि कथावाले भी कहते हैं कि 'स्त्रीमुखं तु सदा शुचि'

श्रद्धा–जैसी आपकी आज्ञा (प्याला लेकर कुछ पीती है और शेष उन्हें देती है)।

भिक्खु–महाप्रसाद (चीख चीख कर पीता है) वाह रे सुरा का सौन्दर्य्य।

वार विलासिनी की मुखपङ्कजपूत सुरा वहु वार पिया है।

वासत मौलसरी के सुगन्धिसे, संगाति मौज अनेक किया है॥

आज कपालिनी के मुखवासित मद्य ने, जो सुख स्वाद दिया है।

क्यौं कहिये सुरपावत नाहि सोनाक में नाइ पियूष पिया है॥

क्षपणक-अरे भिक्खू! सब न सोख जाना, कापालिनी का प्रसाद कुछ मेरे लिये भी छोड़ देना, भाई!

(भिखु वही चुक्कड़ क्षपणक को देता है)

क्षपणक-(पीकर) वाहरे, सुरा का मिठास, बाहरे स्वाद, बाहरे गन्ध वाहरे सुवास, अरे मैं इस अर्हत के अनुशासन मे पड़ा पड़ा इस सुरारससे बराबर वंचित रहा, अरे भिक्खु, मुझे तो चक्कर आरहा है, भाई! मैं सोऊँगा।

भिक्खु-अच्छा, सोजा।

कापालिक-प्रिये, ले विना दाम कौड़ी के दो गुलाम हाथ लगे, सो आवो हम तुम नाचैं (दोनों नाचते हैं)

क्षपणक-अरे भिक्खु, यह खोपडी वाला, नही नही, यह आचार्य्य कापालिनी के साथ अच्छा नाचता है भाई! सो इनके साथ हमलोग भी नाचैं। (लरखराते हुए नाचते हैं)

भिक्खु-आचार्य्य यह दर्शन अद्भुत है, विनाक्लेशही मनोरथ सिद्ध होता है

क्षपणक-'पीन घनस्तन शोभने' इत्यादि पढ़ता है,

कापा०-इसमे तूने आश्चर्य्य क्या समझा।

साधक सिद्धि लहैं सिगरी, अणिमा महिमादिक बात विचारिये।
देरहु नाहि लगे छिन में, विषयारस को कबहूँ नाहिं छाडिये॥
मोहन मारण आदिक सिद्धि, छवो मनुओषध से जिय जानिये।
ये सब ध्यान में विघ्न करैं, अतएव इन्हें जिय से नहि मानिये॥२२॥

क्षपणक-अरे खोपड़ीवाले (सोचकर) नही आचार्य्य, नही नहीं आचार्य्यराज, नहीं कुलाचार्य्य।

भिक्खु-(हँसकर) इसे मदिरा पीने का अभ्यास नहीं है, और पी लिया है इसने बहुत, इसी से विचारा बावला हो गया है सो इसका नशा उतार दीजिये।

कापा०-अच्छा। (अपने खाए हुए पान की सीठीं क्षपणक को देता है)

क्षपणक-(होश में आकर) आचार्य्य! मैं यह पूछता हूँ कि आप

जिस भांति सुरा को आहरण कर सकते हैं, उसी भांति क्या स्त्री पुरुष को भी हरण कर सकते हैं ?

कापा०—यह कौन सी बड़ी बात है—

विद्याधरी सुराङ्गना, किन्नर नाग कुमारि।
विद्यावल त्रिभुवन हरौं, ईप्सितार्थ सवझारि ॥ २३ ॥

क्षपणक—अरे मैंने ज्योतिष से जान लिया, कि हमलोग महामोह के किङ्कर हैं।

दोनों—(विचार कर) ठीक है, आप जैसी कहते हैं, वैसीही बात है॥

क्षपणक—तब तो कुछ राजा का कार्य्य करना चाहिये।

कापालिक—सो क्या ?

क्षपणक—सत्व के बेटी श्रद्धा को महाराज के आज्ञा से हरण करना चाहिये।

कापालिक—बता तो वह गुलाम की बच्ची कहां है ? उसे तुरन्त विद्याबल से खैंच मँगाऊं।

(क्षपणक सेतखली लेकर गणित करता है)

शान्ति—ये अभागे मां के विषय में बात कर रहे हैं। सो हमलोग सावधान होकर सुनें।

करुणा—ठीक है, सुनना ही चाहिये।

क्षपणक—(गणना करके)—

नाहिं जल में, थल में नहीं, गिरि गह्वर, पाताल।
सन्तन के हिय में वसै, विष्णुभक्ति सँग वाल ॥२४॥

करुणा—(आनन्दसे) सखि ! विष्णुभक्ति के पासवर्तिनी श्रद्धाकी दैवबल से कुशल है। (शांति हर्ष नाट्य करती है)

भिक्खु—और काम से भागकर धर्म कहां छिपा है ?

क्षपणक (फिर गणित करके)

नहिजलमे, थलमे नही, गिरि गह्वर, पाताल।
सन्तनके हियमे वसै, विष्णुभक्ति सँगमाल ॥ २५ ॥

कापालिक—(दुःखसे) अरे ! महाराज तो बुरे फँसे। क्योंकि—

मूलसिद्धिकी विष्णुभक्ति सब कुछ करती है।
उनके ही सँग सत्वसुता श्रद्धा रहती है॥
कामफन्द से धर्म छूटकर डँटा वहाँ जाता।
मेरे मत से पौबारह विवेक का पासा॥ २८॥

फिरभी प्राण देकर स्वामी का कार्य्य करना चाहिये, सो अब महाभैरवी विद्याको धर्म और श्रद्धा दोनों के हरण के लिये भेजता हूँ। (सब जाते हैं)

शान्ति–चल हम लोग भी इन हतभाग्यों के कृत्यको चलकर देवी विष्णुभक्ति से कहैं।

(दोनोजाती है)

तीसरा अङ्क समाप्त।

चौथा अङ्क

(मैत्री का प्रवेश)

मैत्री–मुदिता से सुना है, कि यदि भगवती विष्णुभक्ति रक्षा न करती तो प्रिय सखी श्रद्धा को महाभैरवी निगल ही चुकी थी। सो यह जी चाह रहा है कि अपनी प्रियसखी श्रद्धा को कब देख पाऊंगी। (घूमती है)

(श्रद्धा का प्रवेश)

श्रद्धा–(भय से काँपती हुई)

नरकपाल, कुण्डल विशाल, गालन पर हलरत।
नयनन मे अति विषम विज्जु धारासी लहरत॥
कच कराल, जनु ज्वाल माल, चारौ दिशि लहकत।
इन्दुकला सों दशन, मध्य जिह्वा लप लपकत।
अस घोर भयंकर मूर्ति लखि, कासु हृदय नहि धकधकत।
जेहि सुमिरत अजहूँ कदालि तरूसम, ममं मनआति कँपत॥ २॥

मैत्री–(स्वगत) लो, यही तो मेरी प्रियसखी श्रद्धा है। यह विचारी डरती काँपती, मनही मन बुड़बुड़ाती, अपने आंखों के सामने आने पर भी मुझे नहीं देखती है। सो अब इससे बात करना चाहिये (प्रकट) प्यारी सखी श्रद्धे ! जीके दुखी होने से क्या तू मुझे भी नही देखती।

श्रद्धा–(देखकर ठंढी श्वास लेती है) अरे मेरी प्यारी सखी मैत्री।

कालराति विकराल जस, गह्यौ दशनते मोहि।
नयनन भरि देख्यौं बहुरि, सखि मैं जीवत तोहि ॥ ३ ॥

सो आकर मुझे खूब भेंटले।

मैत्री–(वैसाही करके) सखि, विष्णुभक्ति ने तो उस महाभैरवी का रंग फीका कर दिया, अब भी तू काँपती क्यों है ?

श्रद्धा–(नरकपाल कुण्डल विशाल इत्यादि पढ़ती है)

मैत्री–(डरकर) अरे ऐसी कराल मूर्ति। अच्छा तो उसने आकर क्या किया ?

श्रद्धा–

बाझ झपट से टूट कर मेरे दोनों पाँव।
एकहाथ से पकड़ कर, किया धर्म परदाँव ॥
किया धर्मपर दाँव, उसे बाँए से थामा।
लेकर उडी अकाश, भयंकर मूरति वामा ॥
बरणै मिश्र विचारि, पिण्ड दोउ मांसलचट से।
ज्यौं चंगुल में लिये, उड़चले बाझ झपट से ॥४॥

मैत्री–हाय रे हाय (मूर्छित होती है)।

श्रद्धा–सखि, धैर्य्य धरो, धैर्य्य धरो।

मैत्री–(धैर्य्य करके) तब ? तब ?

श्रद्धा–तब तो हमलोगों के आर्तनाद से भगवती को दया आई और उसने–

भ्रुकुटी टेढी लाल, लोचन से देखा उधर।
वज्राहत ज्यौं बाल, गिरी शिला सी टूटकर ॥ ५ ॥

मैत्री-प्रिय सखी, तू भूखे बाघ के मुँह से छूटी हुई, जीती जागती, बड़े भाग से मुझे देख पड़ी है।

श्रद्धा-तब तो आवेश में आकर देवी ने कहा कि 'यह मुआ महामोह बड़ा दुष्ट है, मेरी भी कुछ परवाह नहीं करता, इसका जड़ मैं खोदकर फेंक दूँगी। और मुझे आज्ञा दी कि श्रद्धे तू जाकर विवेक से कह, कि काम क्रोधादिक के जीतने का उद्योग करें, तब जाकर वैराग्य का प्रादुर्भाव होगा, और मैं भी समय समय पर प्राणायामादिकों की सहायता करके तुम्हारे सेना की बल वृद्धि किया करूँगी। और ऋतम्भरादिक देवियाँ शान्त्यादिकों के कौशल द्वारा आपके और उपनिषत् देवी के संयोग से प्रबोधोदय के लिये तरकीब किया करेंगी, सो मैं इस समय विवेक के पास जाती हूं। सखि, तू आजकल क्या करती है ?

मैत्री-हम चारो बहिन तो भगवती विष्णुभक्ति की आज्ञा से विवेक की सिद्धि के लिये महात्माओं के हृदयों में विचरण कर रही हैं—

राग लोभ द्वेषादि दोष से, कलुषित मन जो।
उसको भी मिलजाय, तुरत परम-प्रसाद सो॥
जो सुखियों में, मेरे ऊपर ध्यान लगावे।
औ दुखियों को देखि, उसे अनुकम्पा आवे॥
पुण्य कृपाओं में निरत, उन्हें देखि मुदिता धरै।
पाप कर्मियों पर सदा, दृष्टि उपेक्षा की रहै॥ ९॥

ऐसा करने से हम चारो बहिन रात दिन उसके अभ्युदय में लगी रहती हैं। प्रिय सखी, तुझे अब महाराज का दर्शन कहां होगा ?

श्रद्धा-भगवती ने यह भी बतला दिया है कि राढ़ा नामक एक देश है, वहीं गंगाजी के किनारे चक्रतीर्थ में, राजा विवेक बड़े व्याकुल हो रहे हैं, क्योंकि मतिमीमांसा के पीछे पड़ी हुई है, या यों कहिये कि किसी तरह से प्राणों को धारण किये उपनिषत् देवी से संयोग के लिये तप कर रहे हैं।

मैत्री-तो प्रिय सखी, अब तू जा, हमलोग भी अपने काम में लगें।

श्रद्धा-ऐसा ही हो।

(दोनों जाती हैं)

(विष्कम्भ)

(राजा और प्रतीहारी का प्रवेश)

राजा-अरे पापी महामोह उस महापुरुष को तूने हरतरह से मारडाला।

डूबे हैं अति शान्त निर्मल सुधारूपी चिदानन्द के।
भारी स्वच्छ समुद्र में, तदपि भी पीते नहीं छन्द से ॥
पानी में मृग तृष्णिका जलधि के, भूले हुए से थके।
पीते हैं, रमते, नहान करते, औ ऊबते, डूबते ॥ ६ ॥

या संसारचक्र चलाने वाले महामोह का मूल अबोध है, उसकी निवृत्ति विना तत्वबोध के हो नहीं सकती क्योंकि—

विश्वेश्वर की भक्ति तरु फुलै बोधमय फूल।
महामोह दहि सकै सोइ, जो एहि जग को मूल ॥ ७ ॥
जो चलै मारग भले, प्रायेण सुर उनको भजैं।
दुष्ट मारग में चलै, उनको सगे भाई तजैं ॥ ८ ॥

तत्वज्ञ लोग भी ऐसाही कहते हैं और भगवती विष्णुभक्ति का भी यही आदेश है कि 'कामादिक के जीतने के लिये उद्योग करें, मैंने भी आपका पक्ष धर रक्खा है'। सो काम उधर के ओर का प्रथम वीर है, वह वस्तु विचार ही से जीता जा सकता है। अच्छा। तो उसी को विजय के लिये आज्ञा देता हूँ। वेदवति! वस्तुविचार को तो बुलाओ।

प्रतीहारी-जो आज्ञा महाराज की। (बाहर जाती है, और वस्तु-विचार के साथ लौटती है)

वस्तुविचार-अरे! इस मुए काम ने संसार भर को ठग लिया। जिनको विचार नहीं है उन्हीं के समझ में सुन्दरता का अभिमान बढ़ता है, या यों कहिये, कि दुष्ट महामोह की ही यह करतूत है। यथा

सुख दान की खान इसे कहिये, नलिनी सी खिली अँखियां इसकी हैं।
भल पीन उतंग पयाधर, और नितम्ब के भारन ते लचती है ॥

छकते हँसते रमते बुध भी जहँ, मूरख की तहँ क्या गिनती है।
यह पाप की पूतरि है परतच्छ में, मोह महा महिमा जगती है॥८॥

स्त्री वस्तु ही क्या है? हड्डी के पींजड़े में मांसरूपी गारे के लेप से एक दुर्गन्धि से भरी घिनावनी मूर्ति है, फिर भी वस्तुविचार करनेवाले बुद्धिमानों का मन, इनसे क्यों नहीं उखड़जाता। बात यह है कि लोग अन्य वस्तुओं के गुणों को इसमें आरोपण करलेते हैं, क्योंकि—

पैर में हाटक नूपुर की धुनि, है सुखमा मुकता हलकी।
अरु राग सो कुंकुम की करणी, शुभगन्ध सो फूल के हारन की॥
चित्र विचित्रित चूंदरि है, गुण सो सब मानत नारिन की।
नर्क सरूप हैं सार यही, सब अन्तर बाह्य विचारन की॥ ९॥

(आकाश की ओर) अरे पापी चाण्डाल काम, क्या विना सहारे ही तू लोगों को व्याकुल करता फिरता है, इसीलिये यों समझते हैं कि—

बाला चन्द्रमुखी मुझे निरखती आनन्द से चाहती।
छाती पीन दबा गले लिपटती सुभ्रू मुझे मानती॥

अरे मूढ़!

चाहा था किसने तुझे निरख के? नारी नहीं देखती।
जो है मांसमयी, पशो! लखत सो जाकी नहीं मूरती॥१०॥

प्रतीहारी—महाभाग इधर आवैं (दोनों घूमते हैं) महाराज यहां बैठे हैं, सो आप आगे बढ़ैं।

वस्तुविचार—(आगे बढ़कर) देव की जय होय, जय होय। यह वस्तुविचार प्रणाम करता है।

राजा—यहां बैठिये।

वस्तुविचार—(बैठकर) देव, आपका किंकर आगया, आज्ञा देकर अनुग्रहीत करैं।

राजा—महामोह से और हमलोगों से लड़ाई आपड़ी है, सो उधर

काम प्रथम वीर है, उसका जोड़ सिवा आपके हम लोग दूसरे को नहीं देखते ।

वस्तुविचार – मैं धन्य हूँ कि स्वामी ने मेरा इतना मान किया ।

राजा – अच्छा तो किस हथियार के सफाई से आप काम को जीतेंगे ?

वस्तुविचार – आः फूलकी धनुही, और गिने गिनाये पाँच वाण रखनेवाले काम ग़रीब के जीतने में भी हथियार लेना पड़ेगा – देखिये ।

तुरत विरत होके रोक के इन्द्रियों को ।
स्मरण मनन से भी नारि के जी हटाऊँ ॥
सुरतविरसताको, देहवीभत्सता को ।
प्रति दिन जिय सोंचू, काम को यौं नसाऊँ ॥ ११ ॥

राजा – वाह ! शावाश !

वस्तुविचार – और भी—

बड़े कूल वाली नदियाँ, झरनों के झर से घिसी हुई ।
शिला पड़ी हो, हरे वृक्ष से गिरिवन भूमी ढकी हुई ॥
संगत मिले ज्ञानियों की यदि कथा व्यास की शान्तिमई ।
तौ फिर कहां काम ? क्या नारी ? चरबी हड्डी मांसमई ॥ १२ ॥

कामका प्रधान अस्त्र एक मात्र स्त्री है । सो जहां वह जीती गई वहां काम की फौज वेकार होकर मारी पड़ी, क्योंकि—

चन्द्र सुचन्दन चाँदनी रात भली, ऋतुराज मनोज बढ़ावते ।
केलिके कानन वागन मे, अलिवृन्द अनन्द भरे झनकारते ॥

अथवा—

है घन घोर घटा की छटा, सुसमीर कदम्ब सुगन्धि पसारते ।
काम के यार, सिंगार की सैन, जिते तरुणी के तुरन्तहि हारते ॥ १३ ॥

देर क्यों कियाजाय, महाराज आज्ञा देदें—

सो मैं घने वाण विचार केलै, चहूँ दिशा शत्रु चमू विदारूँ ।
श्री पार्थ ने सिन्धु नृपाल को, ज्यौं मारा रहा त्यौं मन जात मारूं । १४ ।

राजा-(प्रसन्न होकर) तो आप शत्रु के जीतने के लिये तैयार होजाँय।
वस्तुविचार-जो हुकुम महाराज (प्रणाम करके बाहर जाता है)।
राजा-वेत्रवति! क्रोध के जीतने के लिये क्षमा को बुलावो।
प्रतीहारी-जो महाराज की आज्ञा (बाहर जाकर क्षमा को साथ लेकर लौटती है)॥

क्षमा- क्रोधान्धकारसा भृकुटी में बल आया।
गोधूलितेजसा लाल नयन हो आया॥
ऐसे लोगों की विपसी निन्दा बानी।
गम्भीर धीर नीरद से सहते ज्ञानी॥ १५॥

(आत्म श्लाघा के साथ)

वाह रे हम।
ग्लानी न बोलने मे न शूल शिर में है।
है नहीं देह का भंग, न दुख मन में है।
है कुछ भी नहीं अनर्थ, नहीं हिंसा है।
इस क्रोध जीतने में न कोई मुझसा है॥१६॥ (दोनो घूमते हैं)

प्रतीहारी-महाराज यहीं हैं। सो प्रिय सखी! आप निकट जांय।
क्षमा-(निकट जाकर) महाराज की जय होय। यह ·हाराज की दासी क्षमा साष्टाङ्ग प्रणाम करती है।
राजा-क्षमे, यहाँ बैठ जाओ।
क्षमा-(बैठकर) महाराज, क्यां आज्ञा है? यह दासी क्यों बुलाईगई?
राजा- इस लड़ाई में क्रोध का जीतना तुम्हारे जिम्मे है।
क्षमा- महाराज की आज्ञा से मैं स्वयम् महामोह के जीतने के लिये बहुत हूँ। फिर क्रोध तो उसका अनुचर मात्र है, उसके जीतने में क्या रक्खा है। सो बहुत ही जल्द में-

स्वाध्याय यज्ञ तपसादि क्रिया विगारै।
पापी अकारण सदा अति विघ्न डारै॥
क्रोधाग्नि पुंजवरसै जँह दृष्टि डारै॥
मारूँ उसे महिष ज्यौं जगधातृ मारै॥ १७॥

राजा- मैं क्रोध के जीतने का उपाय तुमसे सुना चाहता हूँ।
क्षमा- महाराज, मैं निवेदन करती हूँ।

क्रुद्ध जनों को हँसमुखता से ही टरकाना।
आग भभूका होने पर प्रसाद दिखलाना॥
गाली दे जो उसे कुशल कल्याण सुनाना।
मारै तो कट गया पाप आनन्द मनाना॥
धिक् जिनके वश मन नही, बड़े विपाति में वे पड़े॥
दयाशील यौं सोचता, क्रोध वचा भारे पड़े॥ १८॥

राजा-शाबाश, शाबाश।
क्षमा-महाराज, क्रोध के जीते जाने से हिंसा, पारुष्य, मान, मात्सार्यादि सभी की हार हो जावेगी।
राजा-तो आप जीत के लिये तैयार होजावें
क्षमा-जो महाराज की आज्ञा (जाती है)
राजा-(प्रतीहारी से) वेगवति। लोभ के गुमानभञ्जन सन्तोष को तो बुलाओ।
प्रतीहारी-जो महाराज की आज्ञा (जाती है और सन्तोष के साथ लौटती है)।
सन्तोष-(सोचकर-दया के साथ)।

वनके वृक्षों में फल लगते अप्रयास ही मिलते हैं।
शीतल मधुर पुण्य सरिता जल सेत मेंत के वहते हैं।
कोमल पल्लव लतामयी, विस्तरे मुफ्त में वनते हैं।
क्यौं ये भुक्खड़ धनियों के द्वारे पै धक्के सहते हैं॥ १९॥

(आकाश की ओर देखकर) अरे मूर्ख लोभी! तेरे आंख परका परदा हटना कठिन है। क्यौंकि—

उठाया जो जो वे कवकव नही खण्डित हुए।
पिपासा जाती क्यौं द्रविण मृगतृष्णा जल पिये।

नहीं टूटी आशा, तदपि, न फटा चेत शतधा।
बना है क्या तेरा हृदय कुलिशों से कठिन हा॥ २०॥

यह जो तैने लोभान्ध होकर किया है, सो चित्तको चमत्कृत किये देता है-यथा-

था पाना सो लिया और लूंगा कुछ बढ़कर।
मूल अर्थ से पृथक दूसरा लूंगा चढ़कर॥
इसीभाँति पावना चिन्तने में दिन बीता।
छन भर भी विश्राम नहीं निज सुख से रीता॥
लोभ अँधेरी में फँसा नहीं तनक भी जानता।
आशा डाइन ग्रसेगी चट करदेगी वेपता॥ २१॥

औरभी—

धन मिला कठिनता से अवश्य उसका भी।
या व्यय होगा या नाश, वियोग व्यथा भी॥
है लोप भला या उसका नहीं कमाना।
आया धन जावै दुखका नहीं ठिकाना॥ २२॥

किन्तु—

है मृत्यु नाचती शीश सदा तिसपर भी।
ग्रसती है जरा सर्पणी जो विषधर भी॥
ये पुत्रादिक ज्यौं गृद्ध्र नोचकर खाते।
अज्ञान तमसूमें मिला लोभ रज याते॥
उसको सुबोध जलसे मलकर धोडालो।
तब सन्तोषामृत सिन्धुबीच गोतालो॥ २३॥

प्रतीहारी-मालिक यही हैं, आप आगे बढ़ें (वैसाही करके)
सन्तोष-मालिक की जय होय, यह सन्तोष प्रणाम करता है।
राजा-यहाँ बैठिये (अपने पास बिठाता है)।

सन्तोष-(विनय के साथ बैठता है) सेवक उपस्थित है क्या आज्ञा होती है।

राजा-आपको कौन नहीं जानता। मैं समय नष्ट नहीं किया चाहता। लोभ के जीतने के लिये आप वाराणसी जाइये।

सन्तोष-जो महाराज की आज्ञा। मैं वह हूँ कि-

जो नाना मुख विजयी तींनो लोकों का।
जिसने चाहा वध बन्धन द्विज देवों का॥
दशशीश रूप है लोभ उसे मारूँगा।
श्रीरामचन्द्र की समता मैं पाऊँगा॥ २४॥ (जाता है)

(विनीत वेष पुरुष का प्रवेश)

पुरुष-महाराज, विजय यात्रा के लिये मङ्गल द्रव्य तैयार है, और ज्योतिषियों का वतलाया हुआ प्रस्थान समय भी आपहुंचा।

राजा-हाँ, तब तो सेनापतियों को आज्ञा दो कि सेना का प्रस्थान करदें।

पुरुष-जो महाराज की आज्ञा (बाहर जाता है)

(नेपथ्य में)

सुनो रे भाई सेनिको सुनो,

साजो हस्तीन्द्र जाके भ्रमर मद भरे कुम्भ के पास झूमैं।
जोतो, जोतो, रथों में चपल तुरग, जो टाप से मेघ चूमैं।
लेले भाले सिपाही कमल विपिन सी, व्योम वीथी बनावैं।
अश्वारोही सिरोही सपदि कर धरे तेज घोड़े वढ़ावैं॥ २५॥

राजा-अच्छा तो मङ्गल विधि करके हमलोग चलैं (पारिपार्श्वक से) सारथी को आज्ञा दो कि फौजीरथ साजकर, लेआवै।

परिपार्श्वक-जो महाराज की आज्ञा (जाता है)

(रथ लेकर सारथी का प्रवेश)

सारथी-महाराज रथ सजा तैयार है।

(राजा मङ्गल विधि करके रथपर चढ़ता है)

सारथी—

धूलि धुन्ध से धावन की गति अनुमित होती।
अश्व टाप के टोंकों से महि परसित होती॥
सिन्धु मथन सा घोर शब्द होता है भयकर।
अन्तरिक्ष ज्यौं अश्व चले रथको ले उड़कर॥ २६॥

यही तो त्रिभुवन पावनी वाराणसी नगरी दिखाई पड़ती है।

जहाँ फौवारों से झरत जल झंकार करता।
दिखाती है ऊँची महल शिखरों की शित छटा।
जुन्हैया सी नीकी, सब पर पताके फहरते।
लिये विद्युत जैसे शरद घन बाँकें विहरते॥ २७॥

और नगर सीमा के उपवन भी यही हैं। अहा, इन सघन वृक्षों के जमघट से तो ऐसा जान पड़ता है, कि घटा घिर आई है। फूलों की सुगन्ध आरही है, और खिलते हुए कलियों में से गूंजते हुए भँवरों के भार से ऐसा मकरन्द झर रहा है कि बरसात होगई है, और यहाँ पर तो ऐसा दिखाई पड़ रहा है कि मानो पवन के झँकोरे भी धूल लपेट कर, पाशुपत व्रत ग्रहण किये हुए तपस्वी होगये हैं—यथा

भींगे गंगा में औ पराग तन लाये।
पूजैं शंकर को फूलगिराय चढ़ाये।
गाते स्तुति करते अलिगन के मिस से हैं।
वल्ली भुज से ये पवन नृत्य करते हैं॥ २८॥

राजा—(आनन्द के साथ देखता है)

सो काशी तमहारिणी प्रकटती आनन्द आत्मप्रभा।
विद्यासी, यह मुक्ति के भवन सी, जी को लुभाती मुदा॥
मुक्ताहारक सी, गले सुरसरी, टेढी विराजै छटा।
फेनों के मिससे हँसी वहुत की, वक्रेन्दुकीजो सदा॥ २९॥

सूत-(घूमकर) आयुष्मन्, देखिये, देखिये। यह गंगातीर को सुशोभित करता हुआ भगवान् अनादि देव आदिकेशव का परम पावन मन्दिर है।

राजा-(हर्ष के साथ) अरे।

यहां देह तजि पुण्यजन, इनही में लय होय।
व्यासादिक मुनि ने कहा, क्षेत्रात्मा यह सोय ॥ ३० ॥

सूत-आयुष्मन्, देखिये देखिये, ये काम क्रोध लोभादिक हमलोगों के दर्शनमात्र से यहाँ से दूर देशों की ओर हटते चले जाते हैं।

राजा-हाँ बात तो ऐसी ही है। अच्छा, अब मनोरथ के सिद्धि के लिये हमलोग भगवान् को प्रणाम करें (रथ से उतर कर मन्दिर में जाता है और देखकर)

जय जय भगवन्!

जयति देवदल मुकुट मञ्जुमणि नीराजित पद।
भक्तद्वैततमहरणचरणनख जोतिशान्तिमद ॥
महिमण्डल सह शैल एकरद ते उद्धारत ॥
तीनलोक अति छोट होत त्रयपाद पसारत ॥
जय गोवर्धन उद्धरण गोपवृन्द निर्भय करण।
असमय प्रलय पयोदते, सुनासीर विस्मयकरण ॥
जयति विबुध रिपु वधू शीश सिन्दूर दूर कृत।
हेम नयन तन दरण मेदनी रुधिर पूरकृत।
मधुकैटभ उद्दण्ड चण्ड कण्ठास्थि खण्ड कृत।
मथत सिन्धु लक्ष्मी निकारि निज हिय भूषण कृत।
संसार मोह नाशन सदा, मुक्ता हल शोभित हृदय।
देहु प्रबोधोदय प्रभो, नमो नमो जय जयति जय ॥

(बाहर जाकर देखता है) हम लोगों के ठहरने के लिये यह स्थान बहुत अच्छा है, सो यहां पर ही फ़ौज डेरा दे। (दोनो जाते हैं)

चौथा अङ्क समाप्त।

पांचवां अङ्क

(श्रद्धा का प्रवेश)

श्रद्धा- (सोचकर) यह बात तो सभी जानते हैं, कि-

क्रोधानल जाति भाइयों का भयकारी ।
जिसमें पड़के जल गये घराने भारी ॥
जब पेड़ हवाके झोंकों से टकराते ।
बस अगिन निकल पड़ती अरण्य जल जाते ॥ १ ॥

(आंसू भरकर) अहो, 'मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता' । भाई का शोक सहा नहीं जाता, यह जी से निकलता भी नहीं । एक नहीं सौ विवेक आवैं, पर यह वह आग ही नहीं है, जो मेघों के बरसने से बुझ सके, क्योंकि

यह पृथ्वी, ये पर्वत, ये सरिता सागर ।
होवेंगे, ये भी नष्ट एक दिन जाकर ॥
फिर सड़े तृणों से जीवों की क्या गिनती ?
जानते हुए भी आग हृदय में जलती ॥
यह बन्धुशोक सब शोकों से है भारी ।
इसके आगे विवेक की भी लाचारी ॥ २ ॥

देखो, कामक्रोधादिक ऐसे क्रूरप्रकृति भाइयों के भी मारे जाने से--

काटता मर्म को, तन को भी सुखा देता है ।
दिल जलाता है, भई ! शोक बुरा होता है ॥ ३ ॥

(सोचकर) मुझे तो भगवती विष्णुभक्ति की आज्ञा है, कि 'बेटी श्रद्धे, मैं तो हिंसाप्राय युद्ध को नहीं देख सकती, सो वाराणसी छोड़कर भगवान् के शालिग्रामक्षेत्र में कुछ दिनों तक कालक्षेप करूँगी । तू आकर मुझसे जो जो हो, सो कहना' । सो मुझे अब

जाकर देवी से लड़ाई का सब वृत्तान्त कहना है (घूमकर देखती है) यही तो चक्रतीर्थ है, जहाँपर कि संसारसागर के पार उतारने-वाली नाव के कर्णधार साक्षात् विष्णु भगवान् विराजमान हैं (प्रणाम करके) यही भगवती विष्णुभक्ति बैठी शान्ति के साथ कुछ सलाह कर रही हैं। येही महामुनियों की उपास्यदेवता हैं। अच्छा तो समीप चलें (घूमती है)

(विष्णुभक्ति और शांति का प्रवेश)

शान्ति–देवि, आप तो किसी गाढ़ी चिन्ता में पड़ी हुई मालूम होती हैं।

विष्णुभक्ति–बेटी, इस बड़े भारी युद्ध में बड़ाभारी वीर क्षय होगा, सो इस बलवान् महामोह से भिड़े हुए मेरे बच्चे विवेक की क्या दशा है, मैं नहीं जानती, इसी से मेरा मन उद्विग्न होरहा है।

शान्ति–इसमें चिन्ता की क्या बात है ? मैं जानती हूँ कि राजा विवेक की जीत रक्खी हुई है, क्योंकि आपकी उनपर इतनी कृपा है।

विष्णुभक्ति–बेटी,

यद्यपि होती जीत, धर्मपक्ष के ग्रहण ते।
तदपि होत विपरीत, शङ्का प्रियजन के लिये ॥ ४ ॥

तिसपर भी श्रद्धा के आने में देर होने से, और भी मन में सन्देह उठरहा है।

श्रद्धा-(जाकर) भगवति, मैं प्रणाम करती हूँ।

विष्णुभक्ति–श्रद्धे, तुम्हारा स्वागत हो। सब कुशल तो है।

श्रद्धा–देवि के अनुग्रह से।

शान्ति–माँ, मैं प्रणाम करती हूँ।

श्रद्धा-बेटी, मुझे भेंट।

शान्ति–(वैसाही करती है)

श्रद्धा–भगवति विष्णुभक्ति के कृपा से, तुझे मुनियों के चित्त में स्थान मिले।

विष्णुभक्ति–वहाँ का हाल सुनावो, क्या हुआ ?

श्रद्धा—जो आपके प्रतिकूल चलनेवालों का होना उचित था।

विष्णुभक्ति—पूरा हाल कहो क्या हुआ ?

श्रद्धा—आप ध्यान देकर सुनें, आपके आदिकेशव के मन्दिर के छोड़ने पर, जब कुछ और सवेरा हुआ तो, विजय घोष करते हुए वीरों के सिंहनाद से मानो दिशाओं के कान फटने लगे, और हाथी घोड़ों के टापों के मारे ऐसी धूलि उड़ी कि सूर्य्य छिपगये, और हाथियों के पंखेरूपी कानों के हिलने से इतना सिन्दूर उड़ा कि गोधूली सी लालिमा दशो दिशाओं में छागई, और दोनों ओर के सेना के तैयार होजाने से प्रलय के बादलों के गर्जन सा शब्द सुनाई-पड़ने लगा।

तब तो महाराज ने न्यायदर्शन को दूत बनाकर महाराज महामोह के पास भेजा, और उसने जाकर कहा कि—

छोड़ दो हरिमन्दिरों को वन नदीतट छोड़दो।
पुण्यवानों के मनों को, म्लेच्छ देशों में भगो॥
यदि नहीं मानो तो इस तलवार के खर धार से।
काटकर टुकड़े करूँगा, स्यार खावैं प्यार से॥ ८॥

विष्णुभक्ति—तब, तब—

श्रद्धा—देवि, तब तो भृकुटी चढ़ाकर क्रोध से महामोह ने कहा, कि ओः होः इतनी ढिठाई। अच्छा तो इसका फल विवेक बचा भोगें। ऐसा कहकर उसने पाषण्डियों के मान्य ग्रन्थ, तथा उनके तर्क-शास्त्रों को, सब से पहिले संग्राम में भेजा, और इधर हमलोगों के सेना के शिरोभाग में—

साङ्ग वेद इतिहास, स्मृति पुराण उपवेद छवि।
मानहु चन्द प्रकाश, सरस्वती प्रकटी तुरत॥ ६॥

विष्णुभक्ति—तब, तब।

श्रद्धा—देवि, तब तो वैष्णव, शैव, सौर आदिक भी देवी के पास आकर डँटगये।

विष्णुभक्ति—फिर क्या हुआ ?

श्रद्धा–तत्पश्चात्

तब न्याय सांख्य वैशेषिक भाष्य सुहाए।
ले संग, तर्क कर कोटि विदिशि दिशि छाए॥
मीमांसा भरी उछाह धर्म निधुवदनी।
प्रकटी चण्डी सी गिरा अग्र श्रुति नयनी॥ ७॥

शान्ति–अरे, इन झगड़ालू शास्त्रों के तर्क एकत्र कैसे हुए?

श्रद्धा–बेटी,

एक वंश में जन्म लहि आपस में हो फूट।
ठनै युद्ध जो और से सब मिलि होयँ अटूट॥ ८॥

हमारे शास्त्रों की उत्पत्ति वेद से है, सो उनमें आवान्तर विरोध होते हुए भी, वेद संरक्षण और नास्तिक मतखण्डन में उनका ऐकमत्य रहता है, आगमों के तत्व विचारनेवालों के लिये कहीं विरोध नहीं है, यथा

शान्तानन्त अजन्म अद्वय महाज्योती गुणों से हुई।
ब्रह्मा विष्णु महेश संज्ञक तथा मानी व पूजी गई॥
नाना भांति पुराण शास्त्र रचना से गम्य है एकही।
जैसे एक, अनेक देश नदियों से, प्राप्य है सिन्धुही॥ ९॥

विष्णु भक्ति–तब तब

श्रद्धा–फिर तो हमारे और उनके दोनों ओर के हाथी घोड़े रथ और पैदलों की घटा उमड़ आई, बाणधाराओं के प्रवाह से बरसात हो गई, योद्धाओं ने एक दूसरे पर प्रहार करना आरम्भ किया–

कादर भयङ्कर रुधिर सरिता बाढ़ि परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी॥
जल जन्तु गज पदचर तुरग खर विविध वाहन को गनै।
शरशक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घनै॥ १०॥ (तुलसी)

उस बड़े दारुण संग्राम में, पाषण्ड शास्त्रों ने आपस के फूट के कारण,

चार्वाक तन्त्र को सब के आगे कर दिया, सो वह आपस के ही धक्के मुक्की में मारागया। परन्तु उसके मारे जाने से अन्य पाषण्ड शास्त्र सब बेजड़ के होगये। सो सनातन शास्त्र के लहर के झोंके में पड़कर कोई कहीं जापड़ा और कोई कहीं जा गिरा। सौगत शास्त्र सिन्धु, गान्धार, पारसिक, मागध, अन्ध्र, हूण, वङ्ग, कलिङ्गादि म्लेच्छप्राय देशों में जापड़ा। पाषण्ड दिगम्बर कापालिकादि, अब पाञ्चाल, मालव, आभीर, आवर्तादि समुद्र के किनारे पामरों के देशों में गिरे हुए छिपे छिपे रहते हैं। और न्याय को पीछे किये हुए मीमांसा के प्रहार से जर्जर होकर नास्तिक तर्कों ने अपने शास्त्रों का रास्ता पकड़ा।

विष्णुभक्ति-तब क्या हुआ ?

श्रद्धा-तब तो वस्तुविचार के हाथ से काम मारागया, और क्षमा के पौरुष से क्रोध पारुष्यहिंसादि खेत रहे, सन्तोष ने लोभ, तृष्णा, दैन्य, अनृत, चुगली, स्तेय, असत्परिग्रहादि को बांधलिया, अनुसूया ने मात्सर्य्य को जीता, और दूसरे के बड़प्पन के सम्भावना से, मद का काम तमाम हुआ, दूसरों में गुण की अधिकता से, मान जूझगये।

विष्णुभक्ति-(हर्ष के साथ) वाह, वाह, बहुत अच्छा हुआ, अब महामोह का हाल कहो।

श्रद्धा-देवि, मोह तो, योग में जो विघ्न होते हैं, उन्हें साथ लेकर न जानें कहां छिपा बैठा है।

विष्णुभक्ति-तब तो बड़ा भारी अनर्थ अभी तक बँचा पड़ा है, इसे भी मारना चाहिये।

थिर सम्पति को चाहता, प्रभुतायुत विद्वान।
पावक ऋण अरु शत्रु को, राखै नहीं निशान॥ ११॥

अब मन का वृत्तान्त सुनावो।

श्रद्धा-देवि, वह तो पुत्रपौत्रादि के शोक से प्राण देने पर उतारू है

विष्णुभक्ति-(मुस्कुराकर) यदि ऐसा होजाय तब तो हमलोग कृतकृत्य हो जाँय, और पुरुष भी परमानन्द पद को प्राप्त हो, परन्तु इस पापी को मौत कहाँ ?

श्रद्धा-बात ऐसी ही है, परन्तु आपके प्रबोधोदय के लिये ठान लेने पर वह शरीरों के साथ आप ही न रह जावेगा।
विष्णु भक्ति-अच्छा तो, इस मन को जिसमें वैराग्य हो इसलिये वैयासिकी सरस्वती को मैं भेजूंगी।
(दोनों जाती हैं)

प्रवेशक।

(मन और सङ्कल्प का प्रवेश)

मन-(आंखों में आंसू भरके) हाय! पुत्रो तुम सब कहां गये, अपना प्यारा मुखड़ा तो मुझे दिखाते जाओ, अरे मुझे गले लगालो। मेरे अङ्ग व्याकुल होरहे हैं। हा, इस बुढ़ापे में मेरा पूछनेवाला कौन है? अरे असूयादिक प्यारी बेटियां कहां हैं? और आशा तृष्णा हिंसादि बहुएं क्या हुई? क्या विधाता ने मेरा सब कुछ एकसाथ ही छीन लिया।

यह शोकज्वर अब मर्मभेद करता है।
बढ़ता जाता है अङ्ग अङ्ग दहता है॥
विष से औ पावक से भी यह बढ़कर है।
हा हा पीड़ा की उठती कठिन लहर है॥ १२॥
शिर से पद तक शरीर को शोषण करता।
भागी विवेचना शक्ति रही व्याकुलता॥
यह बुद्धि नाश कर्त्ता, प्रिय जीवन हर है॥
हा हा पीड़ा की० ॥ १२॥ (मूर्छित होकर गिरता है)

संकल्प-(आंसू भरके) राजन्! धैर्य्य धरो, धैर्य्य धरो।
मन-(धैर्य करके) क्या रानी प्रवृत्ति भी इस अवस्था में मुझे ढाढस बँधाने नहीं आतीं?
संकल्प-महाराज, अब प्रवृत्ति महारानी कहाँ हैं? इस कुटुम्ब-क्षय को सुनकर उनका कलेजा फटगया, अब वे इस संसार में नहीं हैं।
मन-हा! प्रिये! तू कहाँ है? अपनी प्यारी सूरत मुझे क्यों नहीं दिखाती?

सपन में भी विना मेरे, न रहती तू कहीं छन भर।
विना तेरे सुषुप्ती में, पड़ा रहता मरा होकर॥
जुदाई उसी प्यारी की, विधाता ने मुझे दे दी।
निकलते ये नहीं तन से, कठिन हैं प्राण पापी भी ॥१३॥

(फिर मूर्छित होता है)

संकल्प-महाराज, धैर्य्य धरो, धैर्य्य धरो।
मन-(धैर्य्य करके) अब मुझे जीने से क्या ? संकल्प, तुम चिता बनावो, अब आग में जलने ही से शोकाग्नि शान्त हो सकेगी।

(वैयासिकी सरस्वती का प्रवेश)

सरस्वती-मुझे भगवती विष्णुभक्ति ने भेजा है कि ' सखि, तुम पुत्र-शोक से दुखी मन को समझाने जाओ, और जिसमें उसे वैराग्य हो वैसा यत्न करो ' सो मुझे वैसाही करना ठहरा, तो मैं इसके निकट चलूं (जाकर) बेटा ! तू इतना कातर क्यों होगया है ? तुम तो जानते ही हो कि यह सब अनित्य है। तुमने तो इतिहास के उपाख्यान पढ़े हैं॥

ब्रह्मा इन्द्र मुनीश सागर मही मन्त्रादि दीर्घायु हैं।
वे भी लाख कड़ोर होकर मरे, ये जीव अल्पायु हैं॥
को है मोह अहो ! प्रकाश करता, जो शोक को लोक में।
बुद्बुद् से तन के मरे, मिलन है जो पाँच का पाँच में ॥१४॥

सो भावों के अनित्यता की चिन्ता (भावना) करो। ' नित्य क्या है और अनित्य क्या है ? ' इस बात का देखनेवाला शोकावेग का अनुभव नहीं करता, क्योंकि—

और सभी कुछ कल्पना एक ब्रह्मही सत्त।
कौन मोह को शोक है ? लखै एक अलखत्त ॥ १५ ॥

मन-भगवति, मन में शोकावेग के उठने से विवेक के लिये स्थान नहीं रह जाता।

सरस्वती-बेटा यह स्नेह का दोष है। सब कोई जानता है कि स्नेह सब अनर्थों का मूल है।

बोते हैं विपवल्लि बीज दुख को, जो प्रेम के नाम से।
होते है अँखुए भरे अनलके, सो नेह के धाम से।
शोकारण्य बढ़ा विशाल इनसे सौलाख शाखा धरे।
देहों को दहता तुषानल यथा निर्धूमज्वाला भरे॥ १६॥

मन-देवि, ऐसा होने पर भी मेरे प्राण शोक के आग से जलरहे हैं, अब ये रह नहीं सकते, बड़ा काम हुआ जो चलती चलाती समय आपका दर्शन होगया।

सरस्वती-यह आत्महत्या तो बड़ा भारी पाप है। और तिसपर भी इन अपकारियों के लिये आपको इतना आवेश क्यों है? देखो—

कभी नहीं उपकार करैंगे, किया नहीं करते।
पुत्र किसी के भी, क्या तेरे, सुखद नहीं होते॥
उनका विरह मर्मभेदी दुख है नाहक, उनके।
लिये बहुतसी मिहनत करना कष्ट बहुत सहके॥ १७॥

और भी-

कितनी नदी उमड़ी हुई वन दुर्ग हिंसक जन्तु से।
कितने पहाडों को नहीं लाँघा है तूने कष्ट से॥
क्या क्या नहीं करना पड़ा इन पापियों ही के लिये।
सेया उन्हे जो द्रव्य मद कालिख रहे मुँह में दिये॥ १८॥

मन-देवी, बात ठीक है, तथापि—

जो आत्मज लालित सदा, विचरत हैं हियमाँहि।
उनका शोक हिये करत, घाव प्राण जनु जाँहि॥ १९॥

सरस्वती-बेटा, इस दुख का कारण ममता की वासना है। और कहा भी है कि—

बिल्ली कपोत को खाय, घर सकल विकल हो जाय।
वह मूषक गौरा खाय, कोई भी करै न हाय॥ २०॥

सो ममता सब अनर्थों का बीज है, इसके नाश का उपाय सोचना चाहिये। देखो—

उत्पन्न होंय तन में बहु कीट भाई।
काढ़ें निकारि तन से उनको सदाई॥
बेटे जिन्हे कहत वे सब भी वही हैं।
सोखैं शरीर यह मोह महत्व ही है॥ २१॥

मन—देवि, यही सही, तथापि ममता की गाँठ नहीं छूटती (सोच-कर-ठंढी श्वास लेकर) मैं सर्वथा आपकी शरण में हूं (पैरों पर गिरता है)

सरस्वती—बेटा, अब तुम्हार हृदय में उपदेश बैठने लगा है, सो एक बात और सुनो—

पिता या, बेटा या, सुहृद यदि होजाय गत जो।
पड़ा छाती पीटै दुसह दुखसे, बुद्धिहत सो॥
बुधों को है झूठे भवजलधि में अन्त कटुता।
बिछोहों से होता समसुख, दृढ़ाती विरजता॥ २२॥

(तब वैराग्यका प्रवेश)

वैराग्य—(सोचकर)

कमलदल से सूक्ष्म चर्म, विरञ्चि यदि मढ़ता नहीं।
मांस के इस पिण्ड को, त्वक् खोल में धरता नहीं॥
गृद्ध काक शृगाल, लोहू मांस के भक्षक सदा।
टूटते इस देह पर, मिलते कहाँ रक्षक तदा॥ २३॥

और भी—

लक्ष्मी चञ्चल ज्वाल, विषय रस कटुक अन्त में।
देह विपाति की गेह, मौत बसती है धन में॥
लोक शोक के हेतु, बहुत अनरथ अबला में।
तौ भी हैं रत घोर पन्थ में, नहिं आत्मा में॥ २४॥

सरस्वती-बेटा, यह देख वैराग्य आ गया, तू इसका सम्मान कर।
मन-अरे बेटा तू कहाँ है।
वैराग्य-(पास जाकर) मैं आप को प्रणाम करता हूँ।
मन-अरे, मैंने तुझे जनमते ही छोड़ दिया था, आ तुझे गले लगाऊँ।
वैराग्य-(वैसाही करता है)
मन-बेटा, तुझे देखने से ही मेरे शोक की लहरैं थम गईं।
वैराग्य-तात, कहाँ शोक, और कहाँ की लहर ?

पथिक रास्ते में, पादप जो वहे सरित में।
मेघ गगन में, मिलते हैं यात्री जहाज में॥
वैसाही पितु, मातु, बन्धु, सुत, प्रिय का मिलना।
कहाँ शोक अवकाश ? सिद्ध सब भाँति विछुरना॥ २५॥

मन-(आनन्द से) देवि, जैसा बच्चे ने कहा, बात वही है, फिर भी आप ध्यान रक्खें।

जीव फँसा जो नेहजाल में, कसा निरन्तर करि अभ्यास।
हो उपाय तो माँ बतलादे, कट जावै ममता का पाश॥२६॥

सरस्वती-बेटा, ममता के कटने का पहिला उपाय यही है कि 'जो हुवा है सो रहेगा भी नहीं' इस बातकी भावना करो। तथा-

कितने पिता पुत्र पत्नी पितृव्य पितामह तेरे।
मरे भला गिनती क्या उनकी अब भी चेत सवेरे॥
क्षणके लिये संग सुहृदोंका ज्यौं प्रकाश चपला का।
बार बार यह बात विचारत टुटै दुःख का नाका॥

मन-भगवति तुम्हारे कृपा से अब मेरा व्यामोह जाता रहा। किन्तु

भगवती चन्द्रमुख तेरा। उपदेशामृत बहुतेरा॥
अतिही निर्मल बरसाता। सुनि हृदय स्वच्छ हो जाता॥
पर मेरे हिंय में छहरैं। अति विकट शोक की लहरैं॥
इकबार हृदय धुल जाता। फिर मलिन तुरत हो जाता॥२८॥

सो इस ताजे चोट की दवा भगवति मुझे बतलावैं।

सरस्वती–बेटा, यहाँ पर मुनियों का उपदेश है कि–

विना वाण के औचट लगता। देख न पड़े मर्म सब छिदता॥
गाढ शोक का चोट दुखद है। सोच नहीं करना औषध है॥२९॥

मन–भगवति; यह सब ठीक है, परन्तु यह चेत रोके नहीं रुकता।

शिक्षा सुनि चित रुकत पै, चिन्ता लेत दबाय।
वात वेग विचलित घटा में, शशि ज्यौं दुरि जाय॥३०॥

सरस्वती–बेटा, सुनो, यह चित्तका विकार है, सो चित्त को किसी शान्त विषय में लगावो।

मन–माँ आप कृपा करके कहैं वह शान्तिका विषय कौन है?

सरस्वती–यह गुप्त बात है, तथापि 'गूढौ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं।'

सुनो,

ध्यावो सदा सघन श्याम उदार हार।
केयूर कुण्डल किरीट धरे हरी को॥

अथवा—

संसार आतप हरै ह्रद शीत ब्रह्म।
तामे प्रवेश करके भज निर्वृतीको॥३१॥

मन–ठीक है। अब,

वह स्त्री नवयौवना, तरु वही भौंरे जिसे सेवते।
वेही नूतन मालती, पवन के झोंके जहाँ खेलते॥
देखा आज विवेक से उड़ गई, भारी तमों की घटा।
ये तो हैं मृग तृष्णिकाजलधि से, बाजीगरी की छटा॥३२॥

सरस्वती–बेटा ऐसा होने पर भी गृहस्थ को उचित है कि एक मुहूर्त भी निराश्रमी होकर न रहे, सोआज से निवृति ही तुम्हारी सहधर्मचारिणी रहे।

मन–(लज्जा के साथ) भगवती की जो आज्ञा।

सरस्वती-शमदम सन्तोषादिक पुत्र तुम्हारे पीछे चलें, यम नियमादिक तुम्हारे मंत्री हों, और तुम्हारे अनुग्रह से विवेक उपनिषत् देवी के साथ युवराज किये जाँय। ये मैत्री आदिक चारो बहिनें भगवती विष्णुभक्ति के साथ तुम्हे राजी करने के लिये आई हैं, सो इनकी खातिर करो।

मन-जो देवी का हुक्म। मैंने सब आज्ञा शिर पर चढाया (हर्ष से पैरों पर गिरता है)

सरस्वती-साम्राज्य करो। इन यम नियमादिकों से आदर के साथ मिलो। इन्ही के साथ आयुष्मान् युवराज होकर रहैं। तुम्हारे स्वस्थ होने पर क्षेत्रज्ञभी अपने स्वभाव पर आजावेगा, क्योंकि--

तेरे संसर्ग से सो प्रणय जलद में, था ढ़का निर्विकारी।
है एकी, वृत्तिवीची गत दिनकर सा, लाख सौ मूर्तिधारी॥
वेटा जौ तू समेटै कथमपि पसरी वृत्तियों को, शमात्मा।
भासै आदित्य सा तौ, अमल मुकुर में, सान्द्र आनन्द आत्मा ३२

सो बन्धु बान्धवों को जल देने के लिये अब हमलोगों को नदी तट पर चलना चाहिये।

मन-जो देवीकी आज्ञा (सब जाते हैं)

पाँचवा अङ्क समाप्त।

छठां अङ्क।

(शान्ति का प्रवेश)

शान्ति-मुझे महाराज विवेक की आज्ञा है, कि बेटी तू तो जानती ही है कि-

और तनय मरगये, मोह भी भागगया जब।
मन को हुआ विराग, विकृति से रहित हुआ तब॥
गये पांचहू क्लेश, वासना संग लगाये।
तत्वबोध चहुँ ओर, पुरुष ने तब फैलाये॥१॥

सो तुम तुरन्त उपनिषत् देवी को साथ लेकर आवो।
शान्ति-(देखकर) मेरी मां तो न जाने क्या बुड़बुड़ाती हुई, इधर ही चली आरही है।

(श्रद्धा का प्रवेश)

श्रद्धा-अरे, आज तो राजकुल को आरोग्य देखकर, बहुत दिनों के बाद मेरी आंखें ऐसी निहाल होगई हैं, कि मानो उन्हें अमृत लाभ होगया है।

सन्त यमादिक पूज्य जहँ, जहँ दुष्टनको दण्ड।
हरि पूजत शम दम लिये, जिनके भक्ति अखण्ड॥

शान्ति-(आगे बढ़कर) माँ, तू अपने मन ही मन क्या कहती चली आरही है।
श्रद्धा-' आज तो राजकुल ' इत्यादि पढ़ती है।
शान्ति-स्वामी पुरुष का झुकाव मन की ओर कैसा है ?
श्रद्धा-जैसा फाँसी पड़नेवाले या डामल (دایم الحبس) होने वाले का होता है।
शान्ति-तो क्या स्वयम् स्वामी ही साम्राज्य को शोभायमान करेंगे ?
श्रद्धा-हाँ, जब अपना अनुसन्धान करते हैं, तो देव स्वयम् स्वाराट् और सम्राट् होजाते हैं।
शान्ति-तो फिर माया पर देव का कैसा अनुग्रह रहता है ?
श्रद्धा-निग्रह कह, अनुग्रह क्यों कहती है ? अतएव देव भी अब सब अनर्थों की जड़ माया को सर्वथा दण्डनीय मानते हैं।
शान्ति-यदि ऐसी बात है, तो आजकल राजकुल की कैसी स्थिति है ?
श्रद्धा-सुनो,

नित्यानित्यविचार ही प्रणयनी, वैराग्य ही है सुहृद।
अच्छे मित्र यमादि हैं, शमदमों की वाहिनी है बृहद॥
मोक्षेच्छा नित की सखी, अनुचरी मैत्री उपेक्षादि हैं।
वैरी नाशन योग्य मोह ममता सङ्कल्प सङ्गादि हैं॥ ३॥

शान्ति–और धर्म के ओर स्वामी का कैसा प्रेम है?

श्रद्धा–बेटी, जब से वैराग्य आया तब से स्वामी ने संसार और परलोक दोनों के फलभोग से जी बिल्कुल हटालिया है। इससे–

नरक भोग पापों के फल से हैं ज्यौं हटते।
जो छीजै दिन रैन पुण्य फल से त्यौं नटते॥
इसी भाँति फल सम्बन्धी कर्मों को छोड़ा।
पाप कर्म की भांति पुण्य से भी मन मोड़ा॥ ४॥

बल्कि स्वयम् धर्म ही स्वामी की आत्मनिष्ठता देखकर, अपने को कृतकृत्य मानता हुआ, आप से आप व्यापारशून्य होगया।

शान्ति–अच्छा तो उन विघ्नों को साथ लेकर, महामोह जो छिपा बैठा है, उसका क्या हाल है?

श्रद्धा–ऐसी गति को प्राप्त होने पर भी, उस मुए महामोह ने स्वामी को लुभाने के लिये, मधुमती विद्या को साथ करके विघ्नों को भेजा। यह सोच कर, कि इस में आसक्त होकर स्वामी विवेक और उपनिषत् की याद भी न करेगा।

शान्ति–तब, तब।

श्रद्धा–तब तो उन सबों ने जाकर स्वामी के पास कोई ऐन्द्रजालिक विद्या दिखलाया। और अब तो वे–

सौ सौ योजन से सुनै भनक को, जी में उठै आपही।
सो सो वेद पुराण भारत कथा तर्कावली वाङ्मयी॥
स्वेच्छा से रचता भले पद भरे, शास्त्रादि काव्यादि भी।
लोको में फिरता, लखै चमकती रत्न स्थली मैरवी॥ ५॥

अब वह मधुमती भूमिका को प्राप्त हुआ है, स्थानाभिमानी देवतालोग उसे यह कह कह कर भुलावा देते हैं, कि अजी यहाँ ठहर जाओ। यहाँ न जन्म है न मृत्यु है। यह रमणीय देश उपाधि से रहित है। ये अदावाली, सलोनी, सिंगार पटार किये, विद्याधरियाँ प्रीति करने में बड़ी चतुर हैं, मङ्गलद्रव्य हाथ में लिये

तुम्हारे सेवा में उपस्थित रहा करैंगी। सो यहाँ चले आवो, क्योंकि-

यहाँ नदी बहती है सुन्दर, रेत सुनहली चमक रही।
यहाँ वरोरू नितम्बिनि सुन्दरि कञ्जमुखी है दमक रही॥
यहाँ बड़े रमणीय वनस्थल, मरकत दल से हरे भरे।
पुण्य कमाई तेरी है, ये लोक भजो आनन्द भरे॥ ६॥

शान्ति-तब, तब।

श्रद्धा-बेटी, तब तो यह सुनकर माया ने कहा कि बहुत अच्छा है, मन ने भी अनुमोदन किया, और संकल्प ने भी उभाड़ा। सो इस समय बुद्धि के मार्ग में पड़े हुए की भाँति स्वामी उनलोगों के ठगहारी को नहीं समझ सकता है॥

शान्ति-हाय हाय! फिर भी स्वामी उसी संसारजाल में जा फँसे!

श्रद्धा-नहीं नहीं।

शान्ति-तब।

श्रद्धा-तब तो पासवर्ती तर्क ने क्रोध से आँखें लाल करके कहा कि स्वामिन्! ये धूर्त विषयों के गीध हैं, फिर उसी भाँति उन्हीं भयङ्कर विषय के आग में आपको झोंक रहे हैं, और आप समझते नहीं हैं। क्यों प्रभो,

भवसागर सन्तरण विचारा। योगनाव कालिया सहारा।
मद में पड उसको छोड़ोगे? अग्नि नदी में डुबकी लोगे?॥७॥

शान्ति-तब, तब।

श्रद्धा-तब उसकी बातें सुनकर, उन्होंने कहा कि 'स्वस्ति विषयेभ्यः' और मधुमती की इति श्री होगई।

शान्ति-वाह वाह, अच्छा तो आप चलीं कहाँ?

श्रद्धा-स्वामी चाहते हैं कि विवेक को देखें।

शान्ति-तो भगवति आप जल्दी करें।

श्रद्धा-लो मैं राजा के पास चली।

शान्ति-मैं भी महाराज की आज्ञा से उपनिषत् को लेने जाती हूँ। तो हमलोग अपने २ काममें लग जाँय।

(दोनों जाती हैं)

प्रवेशक ।

(पुरुष का प्रवेश)

पुरुष–(सोचकर) (हर्ष के साथ) अहो क्या माहात्म्य है भगवती विष्णुभक्ति का ? जिसके प्रसाद से मैंने– (शा० वि)

वीची क्लेश, ममत्व के भँवर थे अत्युग्र, सो भी तरे ।
छूटे मित्र कलत्र वन्धु मगरों के दाँत से भी खरे ॥
बीती क्रोध महाग्नि, और उजड़ी तृष्णालता मूल से ।
पाया पार मनो भवाब्धि तरके, छूटा घने शूल से ॥ ८ ॥

(तत्पश्चात् उपनिषत् और शान्ति का प्रवेश)

उपनिषत्–सखि, ऐसे निर्दयी स्वामी का मुख फिर कैसे देखूँ, जिसने मुझे पराई की भाँति छोड़ दिया, और फिर इतने दिन बीत गये सुधि भी न ली ।

शान्ति–ऐसे विपत्ति में फँसे हुए स्वामी को दोष क्यों देती हो ?

उपनिषत्–तूने मेरी वह दशा नहीं देखी है, इसी से ऐसा बोल रही है । सुन,

टूटी चूड़ी, मणिगण गिरे हाथ मे जो पड़े थे ।
छूटी वेणी रतन सरके शीश में जो मढ़े थे ॥
चाहा पापी जन बन किसने, हाय दासी बनाना ।
होनेसे ही अलग उनके, दुःख का क्या ठिकाना ॥ ९ ॥

शान्ति–यह सब महामोह का पाजीपन है, यहाँ देव का कोई अपराध नहीं है । उस महामोह ही ने कामादि द्वारा मनको बहका कर विवेक को दूर हटा दिया । कुलवधुवों का यह शील स्वाभाविक है कि विपत्ति में पड़े हुए पति के अच्छे दिनों की बाट जोहा करें । सो आवो राजा से मिलकर, और उनसे प्रेमालाप करके, उनका मन रक्खो । अब शत्रु मार डाले गये तुम्हारा मनोरथ परिपूर्ण हुआ ।

उपनिषत्–सखि जब मैं आने लगी तो गीता बेटी ने मुझसे एकान्त

में कहा, कि तुम दोनो (उपनिषत् और विवेक) का स्वामी पुरुष है, इससे उनके प्रश्न के अनुसार ही उत्तर देना, तब प्रबोधोत्पत्ति होगी, सो गुरुजनों के सामने मैं ढिठाई न करूंगी।

शान्ति–देवि, भगवती गीता के ये वचन तर्क वितर्क के योग्य नहीं हैं। यही बात भगवती विष्णुभक्ति ने स्वामी विवेक से भी कहा था। सो आओ भर्त्ता और आदिपुरुष से मिलकर उनका सत्कार करो।

उपनिषत्–जैसा प्रिय सखी कहैं, वैसाही करूँगी। (घूमती है)

(राजा और श्रद्धा का प्रवेश)

राजा–अरे बेटी, शान्ति की भेंट प्रिया उपनिषत् से हो न जावेगी ?

श्रद्धा–सब समझ बूझकर शान्ति गई है, भेंट क्यों न होगी ?

राजा–क्या समझ बूझ कर ?

श्रद्धा–राजन्, देवी विष्णुभक्ति ने पहिले ही कह दिया था, कि मन्दर नाम का जो पर्वत है वहाँ पर एक विष्णुमन्दिर है, वहीं उपनिषत् देवी, तर्क विद्या के भय से, गीता देवी के अन्तर्गत हो रही है।

राजा–तर्क विद्या का भय कैसा ?

श्रद्धा–यह बात वही बतलावेंगी। आप आगे चलें। देखिये, स्वामी केवल आप के आने की चिन्ता करते हुए एकान्त में बैठे हुए हैं।

राजा–(पास जाकर) स्वामिन्, मैं प्रणाम करता हूँ।

पुरुष–बेटा, यह आपने उचित नहीं किया, क्योंकि ज्ञानवृद्ध होनेसे आपही उपदेश दाता हो, इसलिये पिता ठहरे। स्मृति कहती है कि–

बेटों से पूछा भूदेवों ने, शङ्का के उठने पर।
पूर्वकाल में, "क्या करना क्या नहीं धर्म है" दो उत्तर॥
समाधान पितरों का करने लगे, खिली थी ज्ञानकली।
'सुनो पुत्र लोगो' ऐसी वाणी उनके मुखसे निकली॥१०॥

सो यहाँ पर यही धर्म्म है कि आप पिता की भाँति हमलोगों से बर्ताव कीजिये।

शान्ति-यह लो देवि, राजा के साथ स्वामी एकान्त में बैठे हैं, सो आप पास जांय।

उपनित्-(पास जाती है)

शान्ति-स्वामिन्, यह देखिये उपनिषत् देवी पाँव लगने आई हुई हैं।

पुरुष-अरे ऐसा नहीं। तत्व ज्ञान के उदय से यह मेरी माता हुई। सो हमीं लोगों को इसे नमस्कार करना चाहिये। अथवा-

देवी औ जननी कृपा, में बड़ अन्तर आहि।
माता बन्धन दृढ़ करै देवी काटै ताहि॥ ११॥

उपनिषत्-(विवेक को देखती और नमस्कार करके दूर बैठती है)

पुरुष-माँ, कहो, आपने इतने दिन कहाँ बिताये।

उपनिषत्-स्वामिन्,

बकवादी मूरख लोगों के संगति मे।
दिन बीते मठ चौतरे शून्य मन्दिर मे॥

पुरुष-क्या वे आप के प्रभाव को कुछ जानते थे?

उपनिषत्-कुछ भी नहीं, वल्कि-

वे द्रविड़ नारियों के वाणी सी मेरी।
बूझते नथे, कल्पना करैं बहुतेरी॥ १२॥

मेरे विचार से उनका इतनाही प्रयोजन था कि दूसरों का माल हाथ लगे।

पुरुष-तब फिर?

उपनिषत्-तब तो कभी-

त्रय अग्नि, कृष्ण मृगचर्म, प्रोक्षणी, समिधा।
इष्टी, सोमादिक याग, पशुन का सुविधा॥
चहु ओर बने थे, कर्मकाण्ड पद्धति से।
मख विद्या मैने लखी रही, रस्ते से॥ १३॥

पुरुष–तब, तब।

उपनिषत्–तब तो मैंने सोचा कि यह पोथियों का बोझा ढोनेवाली मेरे तत्व को समझेगी, सो इसीके समीप कुछ दिन बितावें।

पुरुष–तब क्या हुवा ?

उपनिषत्–तब मैं उसके पास गई। तो उसने पूछा कि 'भद्रे ! क्या-चाहती हो'। मैंने कहाकि आर्य्ये ! मैं अनाथ हूँ, मुझे अपने में स्थान दो।

पुरुष–तब ?

उपनिषत्–तब मैंने कहा कि,

जहां विश्व की उत्पति थिति लय होती।
जिसके प्रकाश से सृष्टि प्रकाशित होती॥
आनन्द रूप जो उज्वल जगमग ज्योती।
है शान्त सनातन क्रिया नहीं जहँ होती॥
जो पुण्यपुञ्जजन त्यागि द्वैत अँधियारा।
उस भूतेश्वर का लेते जाय सहारा॥
कट जाता है भवबन्धन उनका भारी।
मैं करूँ निरूपण वही ब्रह्म अविकारी॥ १४॥

तब तो उसने कहा कि–

जो करै न कुछ वह फिर कैसा ईश्वर है ?
भव नाश करेगी त्रिया ज्ञान बेपर है॥
करता जावे इसलिये क्रिया भय नासै।
जीना चाहै सौ वरस शान्त मन भासै॥ १५॥

सो मुझे आपकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। इस पर भी आप यदि कर्ता और भोक्ता पुरुष की स्तुति करती हुई कुछ दिनों तक ठहर जाँय, तो मेरी कोई क्षति नहीं है।

राजा–(उपहास करके) अजी यज्ञ विद्या की आँखें धुँए धक्कड़ से धँधली होगई हैं, इसी से ऐसी दुर्बुद्धि फुरती है, और

तभी ऐसे ऐसे कुतर्क करती है। देखो—

लोह पिण्ड जड़ अचल प्रकृति से, चल पड़ता है।
सन्निधान में चुम्बक के जब जा पड़ता है॥
करती विश्व अनेक विश्व द्रष्टा जब लखता।
माया देवी, यही ईश की है ईश्वरता॥ १६॥

इसीलिये, जो लोग तमोगुण से अन्धे हो गये हैं, उन्हीं को मालूम होता है कि ईश्वर नहीं हैं। अबोध से तो संसार की उत्पत्ति हुई, उसे क्रिया से यज्ञ विद्या शमन किया चाहती है। घोर अन्धकार का अन्धकार से नाश चाहती है।

जो यह तममय जड़ प्रकृति भवन करै उँजियार।
तेहि बिनु जाने और नहि, पन्थ शमन संसार॥ १७॥

पुरुष–तब क्या हुआ।

उपनिषत्–तब तो यज्ञ विद्या ने कहा कि 'सखि, तुम्हारे साथ से तो हमारे चेलों की बुद्धि बिगड़ जावेगी, और कर्म की प्रतिष्ठा उनके निगाहों से उतर जावेगी, सो आप कृपा करें, और जहाँ मन भावै, तहाँ चली जायँ'॥

पुरुष–तब, तब ?

उपनिषत्–तब मैं उसे छोड़कर आगे बढ़ी।

पुरुष–तब क्या हुआ ?

उपनिषत्–तब यह हुआ कि मुझसे, कर्मकाण्ड की सहेली मीमांसा से भेंट हुई।

बाँटती कर्म को, यथा यथा अधिकारी।
श्रुत्यादिक छवो प्रमाणों की अनुचारी॥
अतिदेशक उपदेशों से, जो जमजाती।
अपने विचित्र अङ्गों से काम बनाती॥ १८॥

पुरुष–तब ?

उपनिषत्–तब मैंने उससे भी आश्रय ही चाहा। उसने भी पूछा कि

'भद्रे' तुम क्या चाहती हो ? मैंने भी वही उत्तर दिया जो पहिले दिया था। अर्थात् जहाँ विश्वकी उत्पत्ति थिति इत्यादि "पढ़ती है"।

पुरुष-फिर क्या हुआ ?

उपनिषत्-तब तो मीमांसाने अपने पासवर्ती का मुख देखकर कहा, कि हमलोग इनसे यह काम ले सकते हैं कि ये स्वर्गादि फल के भोक्ता पुरुष को प्रतिपादन करें। सो इनको काम में लगा दो। वहाँ पर उनके चेलों में से किसी किसी ने अनुमोदन भी किया। परन्तु दूसरे परम प्रसिद्ध कुमारिल स्वामी ने, जिन्हें मीमांसा के हृदय का अधिष्ठातृ देवता कहना चाहिये, बोल उठे कि, देवि, यह कर्म के योग्य पुरुष का प्रतिपादन नहीं करती, यह तो ईश्वर को अकर्ता और अभोक्ता वर्णन करती है, और वह ईश्वर बिल्कुल निकम्मा है। इसके बाद दूसरे ने कहा कि क्या लौकिक पुरुष से अन्य भी कोई ईश्वर नामवाला है ? तब उसी पहिले ने हंसकर कहा कि है तो—

एक देखता जग कर्मों को, महामोह में भूला एक।
एक कर्म के फलको चाहे दाता होकर देता एक॥
एक कर्म में लगा हुआ है तनका स्वामी है फिर एक।
संग रहित कैसे कर्मों का कर्ता हो सकता है देख॥१९॥

राजा-(हर्ष के साथ) वाहजी कुमारिल स्वामी वाह। आयुष्मन्! इसके बुद्धि की प्रशंसा है।

अव्याहत गति दोनों साथी, एक पेड़ पर रहते हैं।
चुगता एक पका पीपल फल, बैठे एक निरखते हैं॥२०॥

पुरुष-तब ?

उपनिषत्-तब तो मैंने मीमांसा से बात चीत करके अपनी राह ली

पुरुष-फिर क्या हुआ ?

उपनिषत्-फिर तो मेरी भेंट बहुत से चेले चाटियों से घिरे हुए तर्क विद्या से हुई।

कोई विश्व विशेष को कलपता, होता वितण्डा कहीं।
टण्टा निग्रह जल्प जाति छलका आन्वीक्षिकी में सही॥
कोई भेद बतावता प्रकृति का, आत्मा बताता जुदा।
तत्वों को गिनता लिये महदहंकार क्रमों को मुदा॥ २१॥

पुरुष-फिर क्या हुआ—

उपनिषत्-तब मैं उन लोगों के पास गई। और उनके पूछने पर जैसा पहिले कहा था, वैसा ही यहाँ भी अपना काम बतला दिया। जहाँ विश्व की उत्पत्ति थिति इत्यादि। तब तो उन सबों ने खुले २ मेरी दिल्लगी उड़ाई और कहा कि अरे बकवादिन! परमाणुओं से संसार की उत्पत्ति होती है ईश्वर तो निमित्तकारण है। और दूसरे ने क्रोध करके कहा कि 'अरे पापिन! ईश्वर को विकारी बनाकर फिर क्या विनाशधर्मी का उपपादन करती है? सुनरे विश्वकी उत्पत्ति प्रधान से है'।

राजा-अरे! ये झगड़ालू तर्क विद्या इतना भी नहीं समझतीं। जितने प्रमेय नामवाले हैं वे सब घट की भाँति कार्य्य हैं। परमाणु और प्रधान को भी उपादान कारण मानना उचित नहीं है॥

यथा—

जल में शशि, गन्धर्वनगर सा, सपना इन्द्रजाल की भाँति।
जन्मनाशवाला यह जग है, कार्य्य, मेय, मिथ्या सब भाँति॥
स्व प्रकाश हरिके न जानने, से पैदा होता है जो।
हार सर्प अरु सीप रजतसा, तत्वबोध से नसता सो॥ २२॥

विकार की शङ्का तो बालिकाओं के वचन विलास की भाँति है-

शान्त जोति आनन्द नित्य निष्कल निर्मल जो।
जग सम्भव से विकृतिवान क्यौं होवेगा सो?॥
नील कमल दल सा श्यामल बादल आता है।
उससे क्या कुछ भी विकार नभ मे आता है?॥ २३॥

पुरुष-वाह, वाह, यह बुद्धिमानी का विचार मेरे मन को बड़ा प्यारा लगता है (उपनिषत् के प्रति) तब क्या हुआ ?

उपनिषत्-तब तो सबों ने क्रुद्ध होकर कहा, कि यह संसार के लय से मुक्ति बतलाती है। यह नास्तिक हो गई। इसे पकड़ लो। सो सबके सब मुझे पकड़ने दौड़े।

पुरुष-(त्रास के साथ) तब, तब।

उपनिषत्-तब तो मैं अत्यन्त शीघ्रता के साथ चक्कर काट-कर दण्डकारण्य में घुसगई। वहाँ। मन्दराचल पर बने हुए मधुसूदन जी के मन्दिर के निकट ही-

बाहू टूटे मणिगण गिरे, चूर चूड़ी हुई हैं।
छीना चूड़ारतन, शिर के बालभी छू गये हैं।

हाय ! दुष्टों ने मेरी यह दशा कर डाली।

पुरुष-तब फिर ?

उपनिषत्-फिर तो गदा हाथ में लिये बहुतसे पुरुष मन्दिर में से निकल पड़े, और ऐसा निर्दय होकर उन्हें पीटा कि दुष्टों को भागते रास्ता न मिला।

राजा-(सहर्ष) आपका अनादर भगवान् विश्व साक्षी से सहन नहीं होता।

पुरुष-फिर क्या हुआ ?

उपनिषत्-

टूटा मुक्ताहल, वसन भी खैंचने से गिरा जा।
पैठी गीता भवन तब मैं भीत होके तदा हा ! ॥ २४ ॥

तब तो गीता बेटी मुझे वहाँ आई हुई देखकर, माँ माँ कहती हुई, सहसा गले से लिपट गई, और मुझे बिठलाया। सब वृत्तान्त सुनकर उसने कहा। माँ, इसमें चिन्ता न करना। जो आसुरी सम्पत्ति वाले तुझे अप्रमाणित करके अपने मन का करेंगे, उनका शासन करनेवाला परमेश्वर है। इसी बात पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि '-उन द्वेषी क्रूर अधमों को मैं संसार के अशुभ आसुरी योनियों में बराबर फेंक देता हूँ'।

पुरुष-(कौतुक के साथ) देवि, कृपा करके मुझे बतला दो कि जिसे ईश्वर कहते हैं सो कौन है ?

उपनिषत्-(क्रोध किये हुए की भाँति) जो अन्धे की भाँति अपने को न जानै उसे कौन उत्तर देगा ?

पुरुष-(हर्ष के साथ) क्या मैं आत्मा पुरुष परमेश्वर हूँ ?

उपनिषत्-निश्चय, यही बात है, यथा—

पुरुष सनातन तुमसे अन्य नहीं है कोई।
पुरुषोत्तम से अन्य नहीं तुम भी हौ कोई॥
उनमें तुममे भेद किया अनादि मायाने।
सूर्य्य बिम्ब प्रतिबिम्ब भेद जैसे जल ठाने॥ २५॥

पुरुष-(विवेक के प्रति) भगवन्, भगवती ने जो बात कही सो भली भाँति मन में नहीं बैठती

मैं तो विलग ससीम जरामरण धर्मी प्रकट।
कहती देवि असीम मुझे सच्चिदानन्दमय॥ २६॥

विवेक-पदार्थों के न जानने से बातों का अर्थ समझ में नहीं आता। आर्य्य ने जो कहा सो ठीक है।

पुरुष-सो उसके जानने का उपाय आप कृपा करके बतलावैं।

विवेक-(उपदेश करता है)

पुरुष-(आनन्द के साथ सुनी हुई बात को विचारता है)

(निदिध्यासन का प्रवेश)

निदिध्यासन-मुझे भगवती विष्णुभक्ति की आज्ञा है की मेरा गूढ़ अभिप्राय उपनिषत् और विवेक को समझा देना और तुम पुरुष में ठहर जाना (देखकर) यह लो, देवी तो विवेक और पुरुष के पास ही बैठी हुई है। तो चलो पास चलैं (पास जाकर उपनिषत् से-सबके सामने) देवी विष्णुभक्ति ने कहा है कि देवता सङ्कल्पयोनि होते हैं, मैंने ध्यान से जानलिया कि आपको गर्भ है। तुम्हारे गर्भ में क्रूरसत्वा विद्या नाम की कन्या और

प्रबोध नाम का बेटा है। सो संकर्षण विद्या से विद्या को मन में स्थापन करके, और प्रबोधचन्द्र को पुरुष को सुपुर्द करके, वत्स विवेक को साथ लेकर चली आवो।

उपनिषत्-जो देवी की आज्ञा (विवेक को साथ लेकर बाहर जातीहै)

(निदिध्यासन पुरुष में प्रवेश करता है)

पुरुष-(ध्यान नाट्य करता है)

(नेपथ्य में) आश्चर्य्य है, आश्चर्य्य है।

विद्युद्द्युतिसी चकाचौंध चारो दिशि करती।
मनके वक्षः स्तट कपाट को भेदन करती॥
ग्रसती है ससहाय मोह को, कन्या झट से।
होता पुरुष प्रबुद्ध, आप अन्तर्हित चट से॥ २८॥

(प्रबोधोदय का प्रवेश)

प्रबोधोदय-

प्राप्त नही बाधित नहीं नहीं उदित नाहिं अस्त।
क्रम विकाश वाल्य नहीं नहीं असत नहिं सत्त॥
नहीं असत नहि सत्त लोक त्रय बाधित होता।
मेरा सहज प्रकाश उदित भासित जब होता॥
बर्णैं मिश्र विचारि प्रबोधोदय मैं प्राक्तन।
होगा भूले कभी तर्क पदवी अब प्राप्त न॥ २९॥

(घूमकर) पुरुष तो यही है। चलो पास चलैं (पास जाकर) भगवन्! मैं प्रबोधोदय आपको प्रणाम करता हूँ।

पुरुष-(हर्ष पूर्वक) बेटा, आकर मुझसे लिपट जा।

(प्रबोधोदय वसाही करता है)

पुरुष-(आनन्द से) अरे अन्धकार हट गया, सवेरा होगया। यथा

महामोह अँधियार, अरु विकल्प निद्रा घनी।

करत तुरत संहार, सिंह यथा गज यूथ को॥
श्रद्धा शान्ति विवेक, मति यमादि से बोध विधु।
विश्वात्मक जो एक होत प्रकट सो विष्णु मैं॥ ३०॥

भगवती विष्णु भक्ति के प्रसाद से मैं सर्वथा कृतकृत्य हो गया। सो अब तो मैं–

संग किसी से नहीं, नहीं पूछना रहा कुछ।
कहीं चले भी जाँय, प्रयोजन तहाँ नहीं कुछ॥
नही शोक व्यामोह, राग भय द्वेष नहीं है।
शान्त रहूंगा नित्य, मुक्त मुनि टेक यही है॥ ३१॥

विष्णुभक्ति–(हर्ष से पास जाती है) बहुत दिनों पर हमलोगों का मनोरथ सफल हुआ, कि मैं आप को शत्रुओं से रहित देखती हूँ।

पुरुष–देवी विष्णुभक्ति के अनुकम्प के सामने कोई बात कठिन नहीं है (पैरों पर गिरता है)

विष्णुभक्ति–(पुरुष को उठाती है) बेटा, उठो और कहो तुम्हारा कौन सा प्रिय करें।

पुरुष–क्या इससे भी बढ़कर कुछ प्रिय है ? क्योंकि–

पायो विजयानन्द श्री विवेकने, रिपु नशे।
निर्मल नित्यानन्द पद अलभ्य मुझको मिला॥ ३२॥

तथापि यह हो कि–(भरत वाक्य)
(राग रंवर्मेज, अंगरेजी मार्च के अनुसार)

मोके मोके पर जल बरसय।
पूरी पूरी खेती उपजय॥
ईती भीती रहित मही।
पालैं नरपति जन धन भी॥

जानैं निजपद, मानैं हरिपद, ठानैं भगति, बखानैं भी।
भारी तमघन मिटजावे। मोह निशा भी घट जावे।

अच्छे जन सब, ममता सम्भव, पङ्कपयोनिधि तर जावैं ।
अतिभल, निरमल, अविकल, अचिचल, शुभपद, प्रविशैं हरि-जन हो ।
सादर जी में जम जावे जब जो कुछ हो नाटक मत में ।
सेवत भक्ती श्रीरूपा दश दिशि हरिमय देखे सो ॥ ३३ ॥

(सब जाते हैं)

इति श्री कृष्ण मिश्र विरचित प्रबोध चन्द्रोदय नाम नाटक के विजयानन्द त्रियाठी कृत भाषानुवाद का छठा अङ्क समाप्त ॥

शुभमस्तु ।

धन्यवाद ।

कवि कुल चूड़ामणि पं० देवीप्रसाद जीने कृपापूर्वक इसके प्रथम अङ्क का संशोधन किया है, अतएव उक्त महानुभाव को हार्दिक धन्यवाद है ; और धर्मोपदेशक पं० जगमोहन झाजी के उत्साह दिलाने से मैं इस नाटक के के अनुवाद करने ये प्रवृत्त हुआ अतएव उन्हें भी अनेक धन्यवाद है ।

श्रीकृष्ण मिश्रजी के वंश का वर्णन।

गौतमस्यान्ववाये भूदुत्तराशाविभूषणे। उन्नते हिमवच्छृङ्गे गङ्गा-पूर इवोज्ज्वलः ॥ २१ ॥ कर्मोपास्तिज्ञानकाण्डमार्गत्रयविभासुरः ॥ कृष्णशर्मा द्विजः कश्चित् स श्लाघ्यो विबुधोत्तमैः ॥ २२ ॥ युग्मम् ॥ तनुवत्संस्कृता वाणी वाणीव विमला क्रिया ॥ क्रियेव फलवत्यासीत् तस्यावासद्रुमावली ॥ २३ ॥ औन्नत्यात्कुम्भजन्मेवं नीतवान्नीचतांगिरम् गाम्भीर्यातिशयेनैव चक्रे सिन्धोः पराभवम् ॥ २४ ॥ तपोविद्याविमिश्रत्वान्मिश्रोपाख्यामुपागतः । अलंकारः सुमन-सामासीद्गौतमवंशजः ॥ २५ ॥ योजनं पश्चिमं काश्याः प्रागष्टौ च प्रयागतः ॥ पुण्यं दातृपुरं कृष्णोऽध्यस्थाद् भीमेश्वरान्तिके ॥ ३।८० ॥ पीताम्बरेण शालेन वनमालावलम्बिना। श्रीमता रचितं दातृपुरं चक्रभृतेव यत्। तदधिष्ठाय भूदेवः प्रत्यहं मणिकर्णिकाम् । स्नातु-मभ्याययौ भक्त्या विश्वेशं च समर्चितुम् ॥ ८१ ॥ पूर्वाह्णिकमाधाय गृहे वसुपतीश्वरः। मध्याह्णिकक्रियाकाण्डमकरोज्जान्हवीतटे ॥ ८२ ॥ एवम् दातृपुरे,स्थातुर्विधातुरिव कर्मणः । कृष्णस्य कालोत्यक्रामद्-धतो द्वेपतिव्रते ॥ ८३ ॥ अथ केनापि कालेन पुत्रौ सुषुवतुः शुभौ । पत्न्यौतस्य प्रशस्तस्य तपोविद्यासमाधिभिः ॥ ४१ ॥ तयोर्ज्यायान् देव इति कनीयान् राम इत्यभूत्। उभौ सुकृतकर्माणौविनयग्राहिणौ गुरोः ॥ २ ॥ अथ दातृपुरे पुण्ये तिष्ठतो रामशर्मणः । अन्वयः पप्रथे भूमौ दिवीव विबुधद्रुमः ॥ दूरं वृद्धिगते वंशे रामस्य विम-लात्मनः । अजनिष्ट क्रियानिष्ठः प्रवीरो मनुरञ्जनः। गुरोर्वचसि विश्वासी वदान्यः शील सागरः। मधुरोक्तिः स्फुरच्छक्तिः सदाशक्तिः स गौतमः ॥६॥ चत्वारस्तस्य तनयाः कौशलाधिपतेरिव । तेजस्विनः सत्यसन्धा दिगन्तख्यातकीर्तयः ॥१०॥ तेषु राम इव श्रीमानलौकिक-पराक्रमः ॥ प्रथमो भूरसुप्रथमो मनसाराम नामकः ॥ ११ ॥ प्रचण्ड

तरदोर्दण्डखण्डितारातिःमण्डलः । आखण्डल इवाखण्डप्रतापो भूत्स गौतमः ॥ १२ ॥ दशारामो दयारामो मायाराम इति त्रयः अनुजग्मुर्भ्रातरस्तं समया इव भास्करम् ॥ १३ ॥ तस्य दातृपुरेशस्य गौतमानां शिरोमणेः । पत्नीनन्द कुमार्य्यासील्लक्ष्मीरिव मधुद्विषः ॥१५॥ लोकपालांशसंपृक्तं गर्भं धृतवती ततः । जगदभ्युदयार्थाय मनसाराम-वल्लभा । अनभ्रमभवद्व्योम प्रसन्नं हरितां मुखम् । पुंसा हृदि सुखं यज्ञे-वलिवन्द्यसमुद्भवे ॥ २१ ॥ संकर्षणः सुमनसः कामपालः सताम-भात् । उग्रारीणां पुरीहर्त्ता कीर्त्यासीत्तावुभावपि ॥ २६ ॥ सहस्र नयनश्चारैः सहस्रभुजभृद्भटैः । सुरासुराधीश्वरयोः श्रियमे-कां बभार सः ॥ ३० ॥ सुव्रता महिषी तस्य काशी भूमिशतक्रतोः । पतिप्राणाभिधानासीत् प्रभेव महंसानिधे ॥ ३६ ॥ द्वौ तस्यां तनयौ-पूर्वश्चेतसिंहो गुणार्णवः । सुजानसिंहस्तमनु राघवं लक्ष्मणोयथा ॥३८॥ (वलभद्रकृतेचेतसिंहविलासे) ॥ तस्य निष्ठुरसंग्राम शेषयोषित्कुलद्वि-षः । उदपादि फलं पाणिगृहीत्यां हन्त कन्यका ॥ १७ ॥ किन्तुपा णि-गृहीतायां चेतो नामा भवत्सुतः । यस्ताते स्वर्गते राज्यं वर्षाण्ये-कादशाकृत ॥ १८ ॥ तं न्यायेन निराकृत्य दौहित्रोभून्महीपतिः ॥ रोगी कम्प्रादिव कराच्चयावन् वसुधासुधाम् ॥ १९ ॥ तदात्मजोऽभू-उदितनारायण उदित्वदः ॥ परान्धतमसध्वस्तधरोद्धरणजित्व-रः ॥ २० ॥ अथेश्वरीप्रसादादादिनारायण इति श्रुतः । यः शासद् बुद्धिधर्माभ्याम् धरणीमकृतप्रियाम् ॥ २१ ॥ चिकीर्षितमकृत्वैव सप्तत्यापि स हायनैः । दिने वर्षार्कराकायाः पुरन्दरपुरं गतः ॥ २२ ॥ मनोरथस्य मध्येध्व सीदतोऽस्य धुरन्धरः । अभूदयं महाराजः प्रभु-नारायणा भिधः ॥ २३ ॥ श्री जीवनशर्मविरचिते प्रभुचरिते ॥

वंशावली ।

श्रीकृष्णमिश्र

- देवशर्मा
  - (इनके वंशज अब भी सरयूपार में सुनेजाते हैं)
- रामशर्मा
  - (कोई ६०० वर्ष के पश्चात् इस वंशमें
  - बाबू मनोरञ्जनसिंह (हुए)
    - राजा मनसाराम
      - राजा बरिवण्डसिंह
        - राजा चेतसिंह (असवर्णारानी से)
        - बाबू सुजानसिंह (असवर्णारानी से)
        - राजकुमारी पद्म कुँवरि (सवर्णारानी से)
          - राजा महीपनारायणसिंह
            - महाराज उदित नारायणसिंह
            - बाबू दीप नारायणसिंह
            - बाबू प्रसिद्ध नारायणसिंह
              - महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह
              - बाबू नरनारायणसिंह
                - महाराज प्रभु नारायणसिंह काशीनरेश G. C. I. E.
                  - राजकुमार आदित्यप्रसाद नारायणसिंह
          - बाबू भूपनारायणसिंह
    - बाबू दशाराम
    - बाबू मायाराम
    - बाबू दयाराम

शुभम्भूयात्

फूलपुर
—दुई
हालेहुम
साकिन
तहसील
आप के
दायर
आपको
आप
१९६१
मुकाम
मारफत
लत से
गया हो
मुता-
के या
हों, जो
सकें,
दावा

... इस
गुण ग्रामीण शिक्षिकाके कर्मठजनका
... अपने बोलते चेहरे तथा असा-
धारण प्रतिभा द्वारा आकृष्ट किया।
फिर क्या था, मारिया स्मिर्नोवा
इंस्टीच्यूटकी अभिनय फैकल्टीकी
छात्रा बनी।

मारिया स्मिर्नोवाकी दिलचस्पी
हमेशासे मनोविज्ञानमें रही। छोटी
और साधारणसे साधारण भूमिकामें
भी हर चरित्रको सही रूपमें पेश
करने, उसे अपने व्यक्तिगत जीवन
के अनुभवसे समृद्ध करने का यत्न
करती थी। निरन्तर खोज करनेकी
इस प्रवृत्तिने उसे स्वतन्त्र रूपसे
निर्माण करनेकी प्रेरणा दी। उसने
एक लिपि कथा लिखी, जिसके आधार
पर १९२६ में उसका मार्ग नामक
एक फिल्म तैयार हुई। इसमें रूसी
कृषक महिलाके भविष्यकी, ...
लिए, ... लिए उसकी इच्छाका
चित्रण किया गया था। जिसने
सफलता प्राप्तकी और मारिया स्मि-
र्नोवा लिपि लेखकके पद पर आ गई

आवाज और ... ज्ञान बाजी
यह साधारण महिला विभिन्न कला-
त्मक प्रवृत्तियोंके लोगोंके एक बड़े
समुदायको काबूमें कर सकेगी। किंतु
इस छोटेसे शरीरमें महान् इच्छा
शक्ति और दृढ़ता निवास करती थी,
जिन्होंने उसे पेशेवर निर्माता बना
दिया। तीसरे दशकमें उसने जो
बहुत सी फिल्में तैयार कीं उनमें
विशेष रूपसे सेपट पीटर्स वर्गकी
रात और विकटरोंकी सन्तति उल्ले-
खनीय हैं।

एफ० दोस्तोयेव्स्की की एक
कहानीपर आधारित सेंट पीटर्स बर्ग
की रात एक ...तिभा सम्पन्न गायक
के करुणाजनक अन्तको प्रदर्शित
करती है। यह फिल्म अत्यधिक
लोकप्रिय सिद्ध हुई और उसे वेनिस
के फिल्म मेलेमें पुरस्कार प्राप्त हुआ।
अनेक देशोंके फिल्म-दर्शकोंने स्त्रो-
येवाकी नयी फिल्म बोरिस गोदुनोव
भी देखी है।

कैमरामैनके रूपमें
'पंक्युरको पोवये' फिल्मके

पी० ... दिए देंगे। वह यहां
पर आये ... कई एक संगीत
समारोहोंमें भाग ले चुके हैं और
लोगोंमें लोकप्रिय भी हो गये हैं।

शूटिंगमें भूमिधरोंको मुआवजा

नटराज पिक्चर्सकी आगामी
रंगीन फिल्म 'श्री वेदेही' के लिए
बादलका वातावरण तैयार करनेमें
२० हजार गैलन्स बूरेका प्रयोग किया
गया है। इस फिल्म पर
५,०००,०००) खर्च आयेगा। इस
दृश्योंकी शूटिंगमें ही एक महीनेसे
भी अधिकका समय लग गया है।
फिल्मके निर्माताओंने ५,०००) रु०
मुआवजेके रूपमें उन भूमिधरोंको
दिया है जिनके खेतोंको दर्शकोंकी
भीड़ने नुकसान पहुँचाया था। भीड़
पर काबू पानेके लिए लगभग १००
पुलिसमैन बुलाये गये थे।

इस फिल्ममें मुख्य भूमिका
शिवाजी गणेशन तथा पद्मिनी का
है। इस फिल्मका मुख्य विशेषता
इसका संगीत तथा लोक नृत्य

पड़ा है। सरपंच एक ...
सुनवाई करेंगे जिसमें यह तीनों
कलाकार भाग लेंगे। ग्राम पंचायत
ही फिर इनके केसको मुकदमेके बाद
अपना निर्णय देगी।

इस दरबका आयोजन फिल्म
निर्माता-निर्देशक त्रिलोक जेटलीने
किया है। अन्य पात्रोंमें महेन्द्र,
अचला, सजदेव, विपिन गुप्ता,
शशिकला, शोभा खोटे तथा राम
मोहन हैं। संगीत रविशंकर तथा
गीत कवि अनजानने लिखे हैं।

फोर्ट ...

कम्पनी